

## Chapter छब्बीस

### नारकीय लोकों का वर्णन

इस अध्याय में यह बताया गया है कि पापी मनुष्य किस प्रकार विभिन्न नरकों में जाता है जहाँ यमदूत विविध प्रकार से उसे दण्ड देते हैं। जैसाकि भगवद्गीता (३.२७) में कहा गया है—

*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।*

*अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥*

“मोहग्रस्त जीवात्मा भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के वशीभूत होकर अपने को ही सारे कार्यों का कर्ता सोचता है जो कि वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं।” मूर्ख व्यक्ति अपने आपको नियमों से मुक्त मानता है। वह सोचता है कि न तो ईश्वर है और न ही कोई नियामक सिद्धान्त हैं और वह जो चाहे कर सकता है। इस प्रकार वह अनेक पापकर्म करता है, जिसके कारण उसे जन्म-जन्मांतर विभिन्न नारकीय परिस्थितियों में रखा जाता है, जिससे प्रकृति के नियमानुसार उसे दण्डित किया जा सके। प्रकृति के नियमों के वश में रह कर भी वह अज्ञानतावश अपने को स्वतंत्र मानता है और उसकी

यातना का यही मूल सिद्धान्त है। ये नियम तीन गुणों के प्रभाव के अन्तर्गत कार्य करते हैं और इसीलिए प्रत्येक मनुष्य भी तीन प्रकार के प्रभावों के अन्तर्गत कार्य करता है। अपने कर्मों के अनुसार वह इस जीवन में या अगले जीवन में विभिन्न कर्मफलों की यातनाएँ भोगता है। धार्मिक पुरुष नास्तिकों से भिन्न रीति से कार्य करते हैं, अतः वे भिन्न प्रकार से कर्मफल भोगते हैं।

शुकदेव गोस्वामी ने निम्नलिखित अट्टाईस प्रकार के नरकों का वर्णन किया है—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संन्दश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंशशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन तथा सूचीमुख।

यदि कोई व्यक्ति दूसरे का धन, पत्नी या सम्पत्ति चुराता है, तो उसे तामिस्र नामक नरक में डाला जाता है। यदि कोई ठग कर पराई स्त्री का उपभोग करता है, तो उसे अन्धतामिस्र नरक की कठिन यातना सहनी पड़ती है। उस मूढ़ पुरुष के जो शरीर में ही व्यस्त रह कर और इसी सिद्धान्त के आधार पर अन्य जीवात्माओं की हिंसा करके अपना तथा अपने परिवार का पालन करता है रौरव नामक नरक में डाला जाता है। वहाँ पर उसके द्वारा वध किये गये पशु रुरु नामक प्राणियों के रूप में जन्म लेकर उसे पीड़ित करते रहते हैं। जो विभिन्न पशुओं तथा पक्षियों को मारकर पकाते हैं उन्हें यमराज के दूत कुम्भीपाक नामक नरक में रखते हैं जहाँ उन्हें उबलते तेल में डाल दिया जाता है। ब्राह्मण का वध करने वाले को कालसूत्र नामक नरक में डाला जाता है जहाँ की भूमि समतल तथा ताम्र से बनी होती है और भट्टी के समान गर्म रहती है। ब्राह्मणहन्ता उस प्रदेश में अनेक वर्षों तक जलता रहता है। धार्मिक नियमों का पालन न करने वाले तथा मनमानी करने वाले को या जो किसी दुष्ट का अनुयायी होता है, उसे असिपत्रवन नरक में रखा जाता है। जो अधिकारी न्याय करने में गलती करता है अथवा जो निर्दोष को दण्डित करता है उसे यमराज के दूत शूकरमुख नामक नरक में ले जाकर अत्यन्त क्रूरता से पीटते हैं।

भगवान् ने मनुष्य को उच्च कोटि की चेतना प्रदान की है, अतः वह अन्य प्राणियों के कष्टों तथा सुखों का अनुभव कर सकता है। विवेक से रहित मनुष्य की अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति

होती है। यमराज के दूत ऐसे पुरुष को अन्धकूप नामक नरक में ले जाते हैं जहाँ वह अपने पीड़ितों के द्वारा उचित दण्ड पाता है। जो व्यक्ति अतिथि का उचित सत्कार नहीं करता या उसे भोजन नहीं कराता, किन्तु स्वयं भोजन करता है उसे कृमिभोजन नरक प्राप्त होता है जहाँ उसे असंख्य कीड़े-मकोड़े लगातार काटते हैं।

चोर को संदंश नामक नरक की प्राप्ति होती है। अभोग्य स्त्री के साथ यौन सम्बन्ध बनाने वाले व्यक्ति को तप्तसूर्मि नामक नरक में भेजा जाता है। जो व्यक्ति पशुओं के साथ यौन-संसर्ग करता है उसे वज्रकण्टक-शाल्मली नामक नरक में डाला जाता है। उच्चकुल में जन्म लेकर तदनुकूल कार्य न करने वाले व्यक्ति को रक्त, पूय तथा मूत्र की वैतरणी नदी में रखा जाता है। पशु की भाँति रहने वाले व्यक्ति को पूयोद नरक में एवं वन के पशुओं का बिना स्वीकृति के क्रूरतापूर्वक वध करने वाले को प्राणरोध नरक में रखा जाता है। जो व्यक्ति धर्म के नाम पर पशु-हत्या करता है उसे विशसन नरक में और जो अपनी पत्नी को अपना वीर्य पीने के लिए बाध्य करता है उसे लालाभक्ष नरक में भेजा जाता है। जो किसी के घर में आग लगाता है या किसी को विष देता है उसे सारमेयादन नामक नरक में रखा जाता है। झूठी गवाही देकर जीविका चलाने वाले को अवीचि नरक भोगना पड़ता है।

मद्यपान करने वाले को अयःपान नरक में तथा जो बड़ों के प्रति आदरभाव नहीं प्रकट करता उसे क्षारकर्दम नरक में रखा जाता है। भैरव को नर-बलि देने वाले पुरुष को रक्षोगणभोजन नामक नरक में तथा पालतू पशुओं को मारने वाले को शूलप्रोत नरक में रखा जाता है। अन्यो को सताने वाले व्यक्ति को दंदशूक में तथा जीवित प्राणी को गुफा के भीतर बन्द रखने वाले व्यक्ति को अवट-निरोधन नामक नरक में रखा जाता है। जो व्यक्ति अपने घर में आए अतिथि पर अनावश्यक क्रोध करता है उसे पर्यावर्तन नरक में तथा धन से मदान्ध तथा और धन संचय का चिन्तन करने वाले व्यक्ति को सूचीमुख नरक में भेजा दिया जाता है।

इन नरकों के वर्णन के पश्चात् शुकदेव गोस्वामी बताते हैं कि पवित्र पुरुष किस प्रकार देवताओं के वास स्वर्गलोक को जाते हैं और पुण्यों के क्षीण होने पर किस प्रकार इस पृथ्वी पर पुनः आते हैं। अन्त में वे भगवान् के विराट रूप का वर्णन करते हैं और उनके कार्यों की महिमा बताते हैं।

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति. ॥ १ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा बोला; महर्षे—हे महर्षि ( शुकदेव गोस्वामी ); एतत्—यह; वैचित्र्यम्—विचित्रता; लोकस्य—जीवात्माओं की; कथम्—किस प्रकार; इति—इस प्रकार।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे महाशय, जीवात्माओं को विभिन्न भौतिक गतियाँ क्यों प्राप्त होती हैं? कृपा करके मुझसे कहें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने विवेचना की है कि इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न नरक लोक गर्भोदक सागर से थोड़ा ऊपर स्थित हैं और वहीं स्थित रहते हैं। इस अध्याय में यह बताया गया है कि समस्त पापी लोग किस प्रकार इन नरक लोकों में जाते हैं और वहाँ पर यमराज के दूतों द्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं। विभिन्न प्राणी अपने विगत कर्मों के अनुसार सुख या दुख भोगते हैं।

ऋषिरुवाच

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति. ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ऋषिः उवाच—महामुनि ( शुकदेव गोस्वामी ) बोले; त्रि-गुणत्वात्—तीन गुणों के कारण; कर्तुः—कर्ता का; श्रद्धया—श्रद्धा के कारण; कर्म-गतयः—कार्यों के कारण स्थितियाँ; पृथक्—भिन्न; विधाः—प्रकार; सर्वाः—सभी; एव—इस प्रकार; सर्वस्य—उन सबों का; तारतम्येन—विभिन्न मात्राओं में; भवन्ति—सम्भव होते हैं।

महामुनि शुकदेव बोले—हे राजन्, इस जगत में सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण में स्थित तीन प्रकार के कर्म होते हैं। चूँकि सभी मनुष्य इन तीन गुणों से प्रभावित होते हैं, अतः कर्मों के फल भी तीन प्रकार के होते हैं। जो सतोगुण के अनुसार कर्म करता है, वह धार्मिक एवं सुखी होता है, जो रजोगुण में कर्म करता है उसे कष्ट तथा सुख के मिश्रित रूप में प्राप्त होते हैं और जो तमोगुण के वश में कर्म करता है, वह सदैव दुखी रहता है और पशुतुल्य जीवन-बिताता है। विभिन्न गुणों से भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभावित होने के कारण जीवात्माओं को विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं।

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धाया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः. ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; इदानीम्—अब; प्रतिषिद्ध—निषिद्ध; लक्षणस्य—लक्षणों वाला; अधर्मस्य—अपवित्र कार्यों का; तथा—उसी तरह का; एव—निश्चय ही; कर्तुः—कर्ता का; श्रद्धायाः—श्रद्धा का; वैसादृश्यात्—अन्तर के कारण; कर्म-फलम्—कर्मों का फल; विसदृशम्—भिन्न; भवति—होता है; या—जो; हि—निस्संदेह; अनादि—अनन्त काल से; अविद्यया—अज्ञानता के कारण; कृत—किया हुआ; कामानाम्—कामी जनों का; तत्-परिणाम-लक्षणाः—ऐसी अपवित्र कामनाओं के फलों के लक्षण; सृतयः—जीवन की नारकीय दशाएँ; सहस्रशः—हजार प्रकार से; प्रवृत्ताः—फलित; तासाम्—उनका; प्राचुर्येण—विस्तार से; अनुवर्णयिष्यामः—वर्णन करूँगा।

जिस प्रकार पवित्र कर्म करने से स्वर्गिक जीवन में विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं उसी प्रकार दुष्कर्म करने से नारकीय जीवन में विभिन्न गतियाँ प्राप्त होती हैं। जो तमोगुण से प्रेरित होने वाले दुष्कर्मों में प्रवृत्त होते हैं अपनी अज्ञानता की कोटि के अनुसार नारकीय जीवन में विभिन्न कोटियों में रखे जाते हैं। यदि कोई पागलपन के कारण तमोगुण में कार्य करता है, तो उसे सबसे कम कष्ट भोगना पड़ता है। जो दुष्कर्म करता है, किन्तु पवित्र और अपवित्र कर्मों का अन्तर समझता है, उसे मध्यम कष्टकारक नरक में स्थान मिलता है। किन्तु जो नास्तिकतावश बिना समझे-बूझे दुष्कर्म करता है उसे निकृष्ट नारकीय जीवन बिताना पड़ता है। अनादिकाल से अज्ञानतावश प्रत्येक जीव अनेकानेक कामनाओं के कारण हजारों प्रकार के नरक लोकों में ले जाया जाता रहा है। मैं यथासम्भव उनका वर्णन करने का यत्न करूँगा।

राजोवाच

नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति. ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

राजा उवाच—राजा ने कहा; नरकाः—नारकीय प्रदेश; नाम—नामक; भगवन्—हे भगवान्; किम्—क्या; देश-विशेषाः—कोई विशेष देश; अथवा—या; बहिः—बाह्य; त्रि-लोक्याः—तीनों लोकों ( ब्रह्माण्ड ) के; आहोस्वित्—अथवा; अन्तराले—ब्रह्माण्ड के भीतर मध्यवर्ती स्थानों में; इति—इस प्रकार।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—भगवान्, क्या ये नरक ब्रह्माण्ड के बाहर, इसके भीतर या इसी लोक में भिन्न-भिन्न स्थानों पर हैं ?

ऋषिरुवाच

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्ठाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति. ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ऋषिः उवाच—ऋषि ने उत्तर दिया; अन्तराले—मध्यवर्ती स्थान में; एव—निश्चय ही; त्रि-जगत्याः—तीनों लोकों के; तु—लेकिन; दिशि—दिशा; दक्षिणस्याम्—दक्षिणी; अधस्तात्—नीचे; भूमेः—पृथ्वी पर; उपरिष्ठात्—थोड़ा ऊपर; च—तथा; जलात्—गर्भोदक सागर से; यस्याम्—जिसमें; अग्निष्वात्ता-आदयः—अग्निष्वात्ता इत्यादि; पितृ-गणाः—पितर-गण; दिशि—

दिशा में; स्वानाम्—उनके अपने; गोत्राणाम्—परिवार के; परमेण—अत्यधिक; समाधिना—भगवान् के ध्यान में मग्न होकर; सत्याः—सत्य में; एव—निश्चय ही; आशिषः—आशीर्वाद; आशासानाः—कामना करने वाले; निवसन्ति—रहते हैं।

महर्षि शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया—सभी नरकलोक तीनों लोकों तथा गर्भोदक सागर के मध्य में स्थित हैं। वे ब्रह्माण्ड के दक्षिण की ओर भूमण्डल के नीचे तथा गर्भोदक सागर के जल से थोड़ा ऊपर स्थित हैं। पितृलोक भी इसी गर्भोदक सागर तथा अधःलोकों के मध्य के प्रदेश में स्थित है, जिसमें अग्निष्वात्ता आदि समस्त पितृलोक के वासी परम समाधि में लीन होकर भगवान् का ध्यान करते हैं और सदैव अपने गोत्र ( परिवारों ) की मंगल-कामना करते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि पहले बताया जा चुका है, हमारे लोक के नीचे सात अधःलोक हैं जिनमें सबसे नीचे के लोक को पाताललोक कहा जाता है। पाताललोक के नीचे अन्य लोक हैं, जिन्हें नरकलोक कहते हैं। ब्रह्माण्ड के नीचे गर्भोदक सागर फैला हुआ है, अतः पाताललोक तथा गर्भोदक सागर के मध्य ही नरकलोक हैं।

यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; ह वाव—निस्संदेह; भगवान्—सर्वशक्तिमान; पितृ-राजः—यमराज, पितरों के राजा; वैवस्वतः—सूर्यदेव के पुत्र; स्व-विषयम्—अपना राज्य; प्रापितेषु—पहुँच जाने पर; स्व-पुरुषैः—अपने दूतों द्वारा; जन्तुषु—मानव प्राणी; सम्परेतेषु—मृत; यथा-कर्म-अवद्यम्—बद्ध जीवन के नियमों तथा विधानों के उल्लंघन की मात्रा के अनुसार; दोषम्—दोष, त्रुटि; एव—निश्चय ही; अनुल्लङ्घित-भगवत्-शासनः—जो श्रीभगवान् के आदेश का कभी भी उल्लंघन नहीं करता; सगणः—अपने अनुचरों सहित; दमम्—दण्ड; धारयति—देता है।

पितरों के राजा यमराज हैं जो सूर्यदेव के अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र हैं। वह अपने गणों सहित पितृलोक में रहते हैं और भगवान् द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते हुए यमदूत समस्त पापियों को मृत्यु के पश्चात् उनके पास ले आते हैं। अपने कार्यक्षेत्र में लाए जाने के पश्चात् उनके विशेष पापकर्मों के अनुसार यमराज अपना निर्णय देकर उनको समुचित दंड हेतु अनेक नरकों में से किसी एक में भेज देते हैं।

तात्पर्य : यमराज कोई काल्पनिक या पौराणिक पात्र नहीं; वह अपने धाम पितृलोक का स्वामी है। नास्तिकतावादी भले ही नरक में विश्वास न करते हों, किन्तु शुकदेव गोस्वामी नरक-लोकों के अस्तित्व की पुष्टि करते हैं। ये नरक गर्भोदक सागर तथा पाताललोक के मध्य स्थित हैं। यमराज की

नियुक्ति श्रीभगवान् ने यह देखने के लिए की है कि मानव प्राणी उनके नियमों का उल्लंघन न करें। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (४.१७) में की गई है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

“कर्म की गूढ़ताओं को समझ पाना कठिन है, अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म, विकर्म तथा अकर्म के स्वरूप को भली भाँति जाने।” मनुष्य को चाहिए कि वह कर्म, विकर्म तथा अकर्म की प्रकृति को समझकर उसी के अनुसार कार्य करे। यही श्रीभगवान् का नियम है। जो बद्धजीव इस जगत में इन्द्रियभोग के उद्देश्य से आये हैं, उन्हें कतिपय विधि-विधानों के अन्तर्गत इन्द्रियभोग करने दिया जाता है। यदि वे इन विधानों का उल्लंघन करते हैं, तो इसकी परख की जाती है और उन्हें यमराज द्वारा दण्ड दिया जाता है। वह उन्हें नरकलोक में ले जाता है और कृष्णभावनामृत में पुनः ले आने के लिए उन्हें दण्डित करके अपराध मुक्त करता है। किन्तु माया के वशीभूत होकर बद्धजीव तमोगुण से पूर्ण रहते हैं। इस प्रकार यमराज द्वारा पुनः पुनः दण्डित होकर भी वे होश नहीं सँभाल पाते और बारम्बार पापकर्म करते हुए भौतिक स्थिति में रहते जाते हैं।

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति; किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः. ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; ह—निश्चय ही; एके—कोई कोई; नरकान्—नरकों को; एक-विंशतिम्—इक्कीस; गणयन्ति—गिनते हैं; अथ—अतः; तान्—उनको; ते—तुमको; राजन्—हे राजन्; नाम-रूप-लक्षणतः—नामों, रूपों तथा लक्षणों के अनुसार; अनुक्रमिष्यामः—मैं क्रम से वर्णन करूँगा; तामिस्रः—तामिस्र; अन्ध-तामिस्रः—अन्धतामिस्र; रौरवः—रौरव; महा-रौरवः—महारौरव; कुम्भी-पाकः—कुम्भीपाक; काल-सूत्रम्—कालसूत्र; असि-पत्रवनम्—असिपत्रवन; सूकर-मुखम्—सूकरमुख; अन्ध-कूपः—अन्धकूप; कृमि-भोजनः—कृमिभोजन; सन्दंशः—सन्दंश; तप्त-सूर्मिः—तप्तसूर्मि; वज्र-कण्टक-शाल्मली—वज्रकण्टक-शाल्मली; वैतरणी—वैतरणी; पूयोदः—पूयोद; प्राण-रोधः—प्राणरोध; विशसनम्—विशसन; लाला-भक्षः—लालाभक्ष; सारमेयादनम्—सारमेयादन; अवीचिः—अवीचि; अयः-पानम्—अयःपान; इति—इस प्रकार; किञ्च—कुछ और; क्षार-कर्दमः—क्षारकर्दम; रक्षः-गण-भोजनः—रक्षोगणभोजन; शूल-प्रोतः—शूलप्रोत; दन्द-शूकः—दन्दशूक; अवट-निरोधनः—अवटनिरोधन; पर्यावर्तनः—पर्यावर्तन; सूची-मुखम्—सूचीमुख; इति—इस तरह; अष्टा-विंशतिः—अट्ठाईस; नरकाः—नरकलोक; विविध—विभिन्न; यातना-भूमयः—नारकीय यातना वाले स्थल।

कुछ विद्वान नरक लोकों की कुल संख्या इक्कीस बताते हैं, तो कुछ अट्ठाईस। हे राजन्, मैं

क्रमशः उनके नाम, रूप तथा लक्षणों का वर्णन करूँगा। विभिन्न नरकों के नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन तथा सूचीमुख। ये सभी लोक जीवात्माओं को दण्डित करने के लिए हैं।

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसन्तर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

तत्र—नरक लोकों में; यः—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; पर-वित्त-अपत्य-कलत्राणि—पराया धन, पत्नी तथा सन्तान; अपहरति—अपहरण करता है; सः—वह व्यक्ति; हि—निश्चय ही; काल-पाश-बद्धः—काल अथवा यमराज के रस्सों द्वारा बाँधा जाकर; यम-पुरुषैः—यमराज के दूतों द्वारा; अति-भयानकैः—अत्यन्त भयानक; तामिस्रे नरके—तामिस्र नामक नरक में; बलात्—बलपूर्वक; निपात्यते—फेंक दिया जाता है; अनशन—भूखों मारना; अनुदपान—बिना जल के; दण्ड-ताडन—डंडे से प्रताड़ित; सन्तर्जन-आदिभिः—डाँट-फटकार इत्यादि; यातनाभिः—कठोर दण्ड द्वारा; यात्यमानः—दण्डित होकर; जन्तुः—जीवात्मा; यत्र—जहाँ; कश्मलम्—दैन्य; आसादितः—प्राप्त करके; एकदा—कभी-कभी; एव—ही; मूर्च्छाम्—मूर्च्छा; उपयाति—प्राप्त करता है; तामिस्र-प्राये—नितान्त अंधकार की स्थिति में।

हे राजन्, जो पुरुष दूसरों की वैध पत्नी, सन्तान या धन का अपहरण करता है, उसे मृत्यु के समय क्रूर यमदूत काल के रस्सों में बाँधकर बलपूर्वक तामिस्र नामक नरक में डाल देते हैं। इस अंधकारपूर्ण लोक में यमदूत पापी पुरुषों को डाँटते, मारते पीटते और प्रताड़ित करते हैं। उसे भूखा रखा जाता है और पीने को पानी भी नहीं दिया जाता है। इस प्रकार यमराज के क्रुद्ध दूत उसे कठोर यातना देते हैं और वह इस यातना से कभी-कभी मूर्च्छित हो जाता है।

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; एव—ही; अन्धतामिस्रे—अन्धतामिस्र नरक में; यः—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; वञ्चयित्वा—ठग कर; पुरुषम्—दूसरे व्यक्ति को; दार-आदीन्—पत्नी तथा सन्तान; उपयुङ्क्ते—भोग करता है; यत्र—जहाँ; शरीरी—शरीरधारी व्यक्ति; निपात्यमानः—बलपूर्वक फेंका जाकर; यातना-स्थः—अत्यन्त दयनीय स्थिति में रहकर; वेदनया—ऐसी वेदना से; नष्ट मतिः—जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है; नष्ट दृष्टिः—जिनकी दृष्टि क्षीण हो चुकी है; च—भी; भवति—हो जाता है; यथा—जितना कि;



वनस्पतिः—वृक्ष; वृश्च्यमान—काटे जाने पर; मूलः—जिनकी जड़; तस्मात्—इस कारण; अन्धतामिस्रम्—अन्धतामिस्र;  
तम्—उसको; उपदिशन्ति—कहते हैं।

जो व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को धोखा देकर उसकी पत्नी तथा सन्तान को भोगता है वह अन्धतामिस्र नामक नरक में स्थान पाता है। वहाँ पर उसकी स्थिति जड़ से काटे गए वृक्ष जैसी होती है। अन्धतामिस्र में पहुँचने के पूर्व ही पापी जीव को अनेक कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। ये यातनाएँ इतनी कठोर होती हैं कि वह बुद्धि तथा दृष्टि दोनों को खो बैठता है। इसी कारण से बुद्धिमान जन इस नरक को अन्धतामिस्र कहते हैं।

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति. ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; एतत्—यह देह; अहम्—मैं; इति—इस प्रकार; मम—मेरा; इदम्—यह; इति—इस प्रकार; भूत-द्रोहेण—अन्य जीवात्माओं की ईर्ष्या से; केवलम्—अकेले; स्व-कुटुम्बम्—अपने कुटुम्बी जनों को; एव—केवल; अनुदिनम्—नित्य-प्रति; प्रपुष्णाति—निर्वाह करता है; सः—ऐसा व्यक्ति; तत्—वह; इह—यहाँ; विहाय—छोड़कर; स्वयम्—स्वयं; एव—ही; तत्—उसका; अशुभेन—पाप द्वारा; रौरवे—रौरव में; निपतति—गिर जाता है।

ऐसा व्यक्ति जो अपने शरीर को “स्व” मान लेता है अपने शरीर तथा अपनी पत्नी और पुत्रों के पालन के लिए धन कमाने के लिए अहर्निश कठोर श्रम करता है। ऐसा करने में वह अन्य जीवात्माओं के प्रति हिंसा कर सकता है। ऐसे पुरुष को मृत्यु के समय अपनी तथा अपने परिवार की देहों को त्यागना पड़ता है और अन्य प्राणियों के प्रति की गई ईर्ष्या का कर्मफल यह मिलता है कि उसे रौरव नामक नरक में फेंक दिया जाता है।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत (१०.८४.१३) में कहा गया है कि

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके

स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित्

जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

“जो तीन तत्त्वों (पित्त, कफ तथा वायु) से भरे शरीर रूप थैले को “स्व” मान लेता है, जो अपनी पत्नी तथा पुत्रों से घनिष्ठतापूर्वक बँधा रहता है, जो अपनी भूमि को पूज्य मानता है, जो पवित्र तीर्थस्थानों के जल में स्नान करता है, किन्तु जो वास्तविक ज्ञानी पुरुषों से लाभ नहीं उठाता, वह गधे

या गाय के तुल्य है।” दो प्रकार के पुरुष जीवन की भौतिकता में मग्न रहते हैं। प्रथम प्रकार के पुरुष अज्ञानतावश अपने शरीर को “स्व” मान लेते हैं अतः वे निश्चय ही पशुतुल्य हैं ( स एव गोखरः )। किन्तु दूसरे प्रकार का पुरुष न केवल अपने भौतिक शरीर को “स्व” मान लेता है, वरन् अपने शरीर-पालन के लिए नाना प्रकार के पाप करता है। वह अपने परिवार के लिए और अपने लिए सबों को ठगता है और अन्यो से अकारण ईर्ष्या करता है। ऐसा व्यक्ति रौरव नरक में फेंक दिया जाता है। यदि कोई अपने शरीर को ही पशुओं की तरह स्वयं मानता है, तो वह अधिक पापी नहीं होता। किन्तु यदि अपने शरीर-पालन के लिए वृथा ही पापकर्म करता है, तो उसे रौरव नरक में रखा जाता है। ऐसा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का मत है। यद्यपि पशुओं में जीवन के प्रति देहात्मबुद्धि है, किन्तु वे अपने शरीर अपने जोड़ों या बच्चों के पालन के लिए कोई पाप नहीं करते। इसलिए पशुओं को नरक नहीं मिलता, किन्तु जब मनुष्य ईर्ष्या करता है और अपने शरीर-पालन के लिए अन्यो को ठगता है, तो उसे नारकीय अवस्था में रखा जाता है।

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरुवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहू रुरुरिति सर्पादतिकूरसत्त्वस्यापदेशः॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

ये—वे जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; यथा—जितना कि; एव—ही; अमुना—उसके द्वारा; विहिंसिताः—पीड़ित किये गये; जन्तवः—जीवात्माएँ; परत्र—अगले जन्म में; यम-यातनाम् उपगतम्—यमराज द्वारा यातना पहुँचाये जाने पर; ते—वे जीवात्माएँ; एव—निस्संदेह; रुरुवः—रुरु ( एक ईर्ष्यालु पशु ); भूत्वा—बनकर; तथा—उतना; तम्—उसको; एव—ही; विहिंसन्ति—पीड़ा पहुँचाते हैं; तस्मात्—इस कारण; रौरवम्—रौरव; इति—इस प्रकार; आहुः—विद्वानों का कथन है; रुरुः—रुरु नामक पशु; इति—इस प्रकार; सर्पात्—सर्प की अपेक्षा; अति-कूर—अत्यधिक निर्दय तथा ईर्ष्यालु; सत्त्वस्य—जीव का; अपदेशः—नाम।

इस जीवन में ईर्ष्यालु व्यक्ति अनेक जीवात्माओं के प्रति हिंसक कृत्य करता है। अतः मृत्यु के पश्चात् यमराज द्वारा नरक ले जाये जाने पर जो जीवात्माएँ उसके द्वारा पीड़ित की गई थीं वे रुरु नामक जानवर के रूप में प्रकट होकर उसे असह्य पीड़ा पहुँचाते हैं। विद्वान लोग इसे ही रौरव नरक कहते हैं। रुरु सर्प से भी अधिक ईर्ष्यालु होता है और प्रायः इस संसार में दिखाई नहीं पड़ता है।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार रुरु को भारशृंग ( अति-कूरस्य भारशृंगाख्य-सत्त्वस्य अपदेशः संज्ञा ) भी कहा जाता है। श्रील जीव गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ संदर्भ में इसकी पुष्टि की है—रुरु शब्दस्य

स्वयं मुनिनैव टीका-विधानाल्लोकेष्वप्रसिद्ध एवायं जन्तु-विशेषः । इस प्रकार भले ही इस जगत में रुरु दिखाई न पड़ते हों, लेकिन शास्त्रों से इनके अस्तित्व की पुष्टि होती है ।

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥  
१२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; एव—ही; महा-रौरवः—महारौरव; यत्र—जहाँ; निपतितम्—फेंका जाकर; पुरुषम्—व्यक्ति को; क्रव्यादाः नाम—क्रव्याद नामक; रुरवः—रुरु पशु; तम्—उसको ( दोषी पुरुष ); क्रव्येण—उसके मांस-भक्षण हेतु; घातयन्ति—मारते हैं; यः—जो; केवलम्—केवल; देहम्भरः—अपने शरीर का पालन करने पर तुले रहते हैं ।

जो व्यक्ति अन्यो को पीड़ा पहुँचाकर अपने ही शरीर का पालन करता है उसे दण्डस्वरूप महारौरव नामक नरक दिये जाने को अनिवार्य कहा गया है । इस नरक में क्रव्याद नामक रुरु पशु उसको सताते और उसका मांस खाते हैं ।

तात्पर्य : ऐसे पशुतुल्य व्यक्ति को जो केवल देहात्मबुद्धि में रहता है क्षमा नहीं किया जाता । उसे महारौरव नामक नरक में रखा जाता है जहाँ उस पर क्रव्याद नामक रुरु पशु आक्रमण करते हैं ।

यस्त्विह वा अग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यः—वह व्यक्ति जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अग्रः—अत्यन्त क्रूर; पशून्—पशु को; पक्षिणः—पक्षियों को; वा—अथवा; प्राणतः—जीवित अवस्था में; उपरन्धयति—पकाता है; तम्—उसको; अपकरुणम्—अत्यन्त निष्ठुर; पुरुष-आदैः—जो पुरुष के मांस का भक्षण करते हैं, उनके द्वारा; अपि—यहाँ तक कि; विगर्हितम्—भर्त्सना की जाती है; अमुत्र—अगले जन्म में; यम-अनुचराः—यमराज के दूत; कुम्भीपाके—कुम्भीपाक नरक में; तप्त-तैले—उबलते तेल में; उपरन्धयन्ति—पकाते हैं ।

क्रूर व्यक्ति अपने शरीर के पालन तथा अपनी जीभ की स्वाद पूर्ति के लिए निरीह जीवित पशुओं तथा पक्षियों को पका खाते हैं । ऐसे व्यक्तियों की मनुजाद ( मनुष्य-भक्षक ) भी भर्त्सना करते हैं । अगले जन्मों में वे यमदूतों के द्वारा कुम्भीपाक नरक में ले जाये जाते हैं, जहाँ उन्हें उबलते तेल में भून डाला जाता है ।

यस्त्विह ब्रह्मधुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्याममितप्यमानेऽभिनवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; ब्रह्म-धुक्—ब्राह्मण की हत्या करने वाला; सः—ऐसा व्यक्ति; कालसूत्र-संज्ञके—कालसूत्र नामक; नरके—नरक में; अयुत-योजन-परिमण्डले—अस्सी हजार मील की परिधि वाले; ताम्र-मये—ताम्र से बने; तप्त—गरम किये हुए; खले—समतल स्थल में; उपरि-अधस्तात्—ऊपर तथा नीचे; अग्नि—अग्नि द्वारा; अर्काभ्याम्—( तथा ) सूर्य द्वारा; अति-तप्यमाने—अत्यधिक गरम किये जाने पर; अभिनिवेशितः—प्रविष्ट कराये जाने पर; क्षुत्-पिपासाभ्याम्—भूख तथा प्यास से; च—तथा; दह्यमान—जलाया जाकर; अन्तः—भीतर से; बहिः—बाहर से; शरीरः—जिसका शरीर; आस्ते—रहता है; शोते—कभी लेटता है; चेष्टते—कभी अपने अंगों को हिलाता-डुलाता है; अवतिष्ठति—कभी खड़ा होता है; परिधावति—कभी इधर-उधर दौड़ता है; च—भी; यावन्ति—जितने; पशु-रोमाणि—पशु के शरीर के रोम; तावत्—उतने; वर्ष-सहस्राणि—हजारों वर्ष।

ब्राह्मण-हन्ता को कालसूत्र नामक नरक में रखा जाता है, जिसकी परिधि अस्सी हजार मील की है और जो पूरे का पूरा ताम्बे से बना है। इस लोक की ताम्र-सतह ऊपर से तपते सूर्य द्वारा और नीचे से अग्नि द्वारा तप्त होने से अत्यधिक गरम रहती है। इस प्रकार ब्राह्मण का वध करने वाला भीतर और बाहर से जलाया जाता है। भीतर-भीतर वह भूख-प्यास से और बाहर से झुलसा देने वाले सूर्य तथा ताम्र की सतह के नीचे की अग्नि से झुलसता रहता है। अतः वह कभी लेटता है, कभी बैठता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ता है। इस प्रकार वह उतने हजार वर्षों तक यातना सहता रहता है जितने कि पशु-शरीर में रोमों की संख्या होती है।

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतो धारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्के . ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्संदेह; निज-वेद-पथात्—वेदों द्वारा बताये गये अपने पथ से; अनापदि—बिना आपात काल के; अपगतः—दूर हटा हुआ; पाखण्डम्—पाखण्डवाद; च—तथा; उपगतः—पास पहुँचा हुआ; तम्—उसको; असि-पत्रवनम्—असिपत्रवन नामक नरक में; प्रवेश्य—प्रविष्ट कराकर; कशया—चाबुक से; प्रहरन्ति—पीटते हैं; तत्र—वहाँ; ह—ही; असौ—वह; इतः ततः—इधर-उधर; धावमानः—दौड़ते हुए; उभयतः—दोनों ओर; धारैः—तीक्ष्ण नौकों से; ताल-वन-असि-पत्रैः—ताड़ वृक्षों की तलवार जैसी पत्तियों से; छिद्यमान—छिदकर; सर्व-अङ्गः—जिसका सम्पूर्ण शरीर; हा—हाथ; हतः—मर गया; अस्मि—हूँ; इति—इस प्रकार; परमया—असह्य; वेदनया—पीड़ा से; मूर्च्छितः—मूर्च्छित, संज्ञाशून्य; पदे पदे—प्रति पग पर; निपतति—गिर पड़ता है; स्व-धर्म-हा—अपने धर्म के नियमों का हन्ता; पाखण्ड-अनुगतम् फलम्—नास्तिक पथग्रहण करने का फल; भुङ्के—भोगता है, सहता है।

यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विपत्ति न होने पर भी वैदिक पथ से हटता है, तो यमराज के दूत उसे असिपत्रवन नामक नरक में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं। जब वह अत्यधिक पीड़ा के कारण इधर-उधर दौड़ता है, तो उसे अपने चारों ओर तलवार के समान तीक्ष्ण ताड़ वृक्षों की पत्तियों के बीच छटपटाता है। इस प्रकार पूरा शरीर क्षत-विक्षत होने से वह प्रति पग-पग पर

मूर्च्छित होता रहता है और चीत्कार करता है, “हाय! अब मैं क्या करूँ? मैं किस प्रकार से बचूँ!” मान्य धार्मिक नियमों से विपथ होने का ऐसा ही दण्ड मिलता है।

तात्पर्य : वास्तव में धार्मिक नियम केवल एक है— धर्म तु साक्षाद् भवगत्प्रणीतम्। श्रीभगवान् के आदेशों का पालन करना ही एकमात्र धार्मिक नियम है। दुर्भाग्यवश, इस कलियुग में विशेषतः प्रत्येक व्यक्ति नास्तिक है। मनुष्य ईश्वर में विश्वास तक नहीं करते, उनके वचनों का पालन तो दूर रहा। निज-वेद-पथ का यह अर्थ भी हो सकता है—“किसी के अपने धार्मिक नियमों का समुच्चय।” प्रारम्भ में केवल एक वेद-पथ अर्थात् धार्मिक नियमों का समुच्चय था, अब अनेक हैं। कोई चाहे जिन धार्मिक नियमों का पालन करे, मात्र बन्धन यह है कि वह उनका कठोरता से पालन करे। नास्तिक वह है जो वेदों को नहीं मानता। किन्तु यदि कोई भिन्न धर्म-पथ का अनुसरण करता है, तो इस श्लोक के अनुसार उसे चाहिए कि वह उसका अनुसरण करे। कोई चाहे हिन्दू हो या मुसलमान अथवा ईसाई, उसे अपने ही धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। किन्तु यदि कोई स्वतः अपने मन में अपना धर्म-पथ गढ़ लेता है या वह किसी भी धार्मिक नियम का पालन नहीं करता, तो उसे असिपत्रवन नामक नरक की यातना भोगनी पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को किन्हीं धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह पशु से किसी भी प्रकार श्रेष्ठतर नहीं। ज्यों-ज्यों कलियुग आगे बढ़ रहा है, मनुष्य नास्तिक होते जा रहे हैं और तथाकथित धर्म-निरपेक्षता को ग्रहण कर रहे हैं। उन्हें इसका तनिक भी ज्ञान नहीं है कि असिपत्रवन में उन्हें दण्डित किया जाएगा जैसा कि इस श्लोक में वर्णित है।

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन्क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; राजा—राजा; राज-पुरुषः—राजा का आदमी; वा—अथवा; अदण्ड्ये—अदण्डनीय को; दण्डम्—दण्ड; प्रणयति—देता है; ब्राह्मणे—ब्राह्मण को; वा—अथवा; शरीर-दण्डम्—शारीरिक दण्ड; सः—वह व्यक्ति, राजा अथवा राज्याधिकारी; पापीयान्—पापी मनुष्यों को; नरके—नरक में; अमुत्र—अगले जन्म में; सूकरमुखे—सूकरमुख नरक में; निपतति—गिरता है; तत्र—वहाँ; अति-बलैः—अत्यन्त बलशाली यमदूतों द्वारा; विनिष्पिष्यमाण—कुचला जाकर; अवयवः—शरीर के विभिन्न अंग; यथा—सदृश; एव—ही; इह—यहाँ; इक्षु-खण्डः—गन्नों के टुकड़े; आर्त-स्वरेण—करुण स्वर से; स्वनयन्—चिल्लाते हुए; क्वचित्—कभी-कभी; मूर्च्छितः—मूर्च्छित होकर;

कश्मलम् उपगतः—मोहग्रस्त होकर; यथा—सदृश; एव—निस्सन्देह; इह—यहाँ; अदृष्ट-दोषाः—जो दोषी नहीं है; उपरुद्धाः—दण्ड हेतु बन्दी बनाया गया।

अगले जन्म में यमदूत निर्दोष पुरुष या ब्राह्मण को शारीरिक दण्ड देने वाले पापी राजा अथवा राज्याधिकारी को सूकरमुख नामक नरक में ले जाते हैं जहाँ उसे यमराज के दूत उसी प्रकार कुचलते हैं जिस प्रकार गन्ने को पेर कर रस निकाला जाता है। जिस प्रकार से निर्दोष व्यक्ति दण्डित होते समय अत्यन्त दण्डनीय ढंग से चिल्लाता है और मूर्च्छित होता है ठीक उसी तरह पापी जीवात्मा भी आर्तनाद करता एवं मूर्च्छित होता है। निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देकर पीड़ित करने का यही फल है।

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः. ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; भूतानाम्—कुछ जीवात्माओं को; ईश्वर—परम नियन्ता द्वारा; उपकल्पित—बनाया गया; वृत्तीनाम्—जिनकी जीविका; अविविक्त—न जानते हुए; पर-व्यथानाम्—पर-पीड़ा; स्वयम्—अपने आप; पुरुष-उपकल्पित—श्रीभगवान् द्वारा निर्मित; वृत्तिः—जिनकी जीविका; विविक्त—जानते हुए; पर-व्यथः—पर पीड़ा; व्यथाम् आचरति—तो भी पीड़ा पहुँचाता है; सः—ऐसा व्यक्ति; परत्र—अगले जन्म में; अन्धकूपे—अन्धकूप नरक में; तत्—उनको; अभिद्रोहेण—द्रोह करने से; निपतति—गिरता है; तत्र—वहाँ; ह—निस्सन्देह; असौ—वह व्यक्ति; तैः जन्तुभिः—उन-उन जीवों द्वारा; पशु—पशु; मृग—जंगली जानवर; पक्षि—पक्षी; सरीसृपैः—सर्प; मशक—मच्छर; यूका—जूँ; मत्कुण—कीड़े; मक्षिक-आदिभिः—मक्खी आदि; ये के—अन्य जितने; च—और; अभिद्रुग्धाः—दण्डित; तैः—उनके द्वारा; सर्वतः—सर्वत्र; अभिद्रुह्यमाणः—पीड़ा पहुँचाये हुए; तमसि—अंधकार में; विहत—विक्षुब्ध; निद्रा-निर्वृतिः—जिनके वासस्थान; अलब्ध—प्राप्त न होने वाले; अवस्थानः—आवास; परिक्रामति—घूमता है; यथा—जिस प्रकार; कु-शरीरे—निम्न योनि के देह में; जीवः—जीव।

परमेश्वर की व्यवस्था से खटमल तथा मच्छर जैसे निम्न श्रेणी के जीव मनुष्यों तथा अन्य पशुओं का रक्त चूसते हैं। इन तुच्छ प्राणियों को इसका ज्ञान नहीं होता है कि उनके काटने से मनुष्यों को पीड़ा होती होगी। किन्तु उच्च श्रेणी के मनुष्यों—यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—में चेतना विकसित रूप में होती है, अतः वे जानते हैं कि किसी का प्राणघात करना कितना कष्टदायक है। यदि ज्ञानवान् होते हुए भी मनुष्य विवेकहीन तुच्छ प्राणियों को मारता है या सताता है, तो वह निश्चय ही पाप करता है। श्रीभगवान् ऐसे मनुष्य को अन्धकूप में रखकर दण्डित करते हैं जहाँ उसे वे समस्त पक्षी तथा पशु, सर्प, मच्छर, जूँ, कीड़े, मक्खियाँ तथा अन्य प्राणी, जिनको उसने अपने जीवनकाल में सताया था, उस पर चारों ओर से आक्रमण करते हैं

और उसकी नींद हराम कर देते हैं। आराम न कर सकने के कारण वह अंधकार में घूमता रहता है। इस प्रकार अन्धकूप में उसे वैसी ही यातना मिलती है जैसी कि निम्न योनि के प्राणी को।

**तात्पर्य :** इस शिक्षाप्रद श्लोक से हमें पता चलता है कि निम्न प्राणी प्रकृति के नियमानुसार मनुष्यों को तंग करने के लिए उत्पन्न किये गये हैं, अतः वे दण्डनीय नहीं हैं। चूँकि मनुष्यों में चेतना विकसित है, अतः वे वर्णाश्रम धर्म के नियमों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकते, अन्यथा भर्त्सना के पात्र होंगे। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (४.१३) में कहा है—चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः—“प्रकृति के त्रिगुणों और नियत कर्म के अनुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं।” अतः समस्त मनुष्यों को चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—में विभाजित करना चाहिए और उन्हें निर्दिष्ट नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए। वे उन नियमों से तनिक भी विपथ नहीं हो सकते। इन नियमों में से एक में बताया गया है उन्हें किसी पशु को, यहाँ तक कि जो मनुष्यों को सताते हैं उन्हें भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। यद्यपि शेर किसी पशु पर आक्रमण करके उसे मार कर उसका मांस खाता है तथापि वह पापमय नहीं है, किन्तु यदि विकसित चेतना से पूर्ण मनुष्य भी ऐसा करे तो उसे दण्डित किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वह मनुष्य जो अपनी विकसित चेतना का उपयोग नहीं करता, वरन् उल्टे पशुवत् व्यवहार करता है, वह अनेक नरकों में दण्ड पाता है।

यस्त्विह वा असंविभज्याशनाति यत्किञ्चनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहृतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते. ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

यः—कोई व्यक्ति जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; असं-विभज्य—बिना बाँटे; अशनाति—खाता है; यत् किञ्चन—जो भी; उपनतम्—श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त; अनिर्मित—बिना किये हुए; पञ्च-यज्ञः—पाँच प्रकार के यज्ञ; वायस—कौवे; संस्तुतः—सम रूप में वर्णित; सः—ऐसा पुरुष; परत्र—अगले जन्म में; कृमिभोजने—कृमिभोजन लोक में; नरक-अधमे—अत्यन्त निकृष्ट नरक में; निपतति—गिरता है; तत्र—वहाँ; शत-सहस्र-योजने—१,००,००० योजन वाले (८,००,००० मील वाले); कृमि-कुण्डे—कीड़ों के कुंड में; कृमि-भूतः—कीड़ों में से एक बनना; स्वयम्—स्वयं; कृमिभिः—अन्य कीड़ों के द्वारा; एव—निश्चय ही; भक्ष्यमाणः—भक्षित होकर; कृमि-भोजनः—खाद्य कीड़े; यावत्—जहाँ तक; तत्—वह कुंड चौड़ा है; अप्रत्त-अप्रहृत—बिना बाँटा और बिना दिया हुआ भोजन; अदः—जो खाता है; अनिर्वेशम्—जिसने परिशोध नहीं किया; आत्मानम्—अपने आपको; यातयते—पीड़ा पहुँचाता है।

जो मनुष्य कुछ भोजन प्राप्त होने पर उसे अतिथियों, वृद्ध पुरुषों तथा बच्चों को न बाँट कर स्वयं खा जाता है अथवा बिना पंचयज्ञ किये खाता है, उसे कौवे के समान मानना चाहिए। मृत्यु

के बाद वह सबसे निकृष्ट नरक कृमिभोजन में रखा जाता है। इस नरक में एक लाख योजन (८,००,००० मील वाले) विस्तृत वाला कीड़ों से परिपूर्ण एक कुंड है। वह इस कुंड में कीड़ा बनकर रहता है और दूसरों कीड़ों को खाता है और ये कीड़े उसे खाते हैं। जब तक वह पापी अपने पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर लेता, तब तक वह कृमिभोजन के नारकीय कुंड में उतने वर्षों तक पड़ा रहता है, जितने योजन इस कुंड की चौड़ाई है।

तात्पर्य : भगवद्गीता (३.१३) में कहा गया है—

*यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।*

*भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥*

“यज्ञ से बचे भोजन को करने वाले भगवद्भक्त सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु जो इन्द्रियतृप्ति के लिए भोजन बनाते हैं, वे तो पाप ही खाते हैं।” हमें सारा भोजन श्रीभगवान् से प्राप्त है। एको बहूना यो विदधाति कामान्—भगवान् हर एक को जीवन की आवश्यकताएँ प्रदान करते हैं, अतः हमें चाहिए कि उनके अनुग्रह को यज्ञ द्वारा स्वीकार करें। यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। दरअसल, जीवन का एकमात्र उद्देश्य यज्ञ करना है। श्रीकृष्ण के अनुसार ( भगवद्गीता ३.९)—

*यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।*

*तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥*

“भगवान् विष्णु के लिए यज्ञरूप में कर्म करना चाहिए, अन्यथा कर्म से इस भौतिक जगत में मनुष्य बँध जाता है। इसलिए हे कुन्तीपुत्र! विष्णु की प्रसन्नता के लिए निर्दिष्ट कर्म का आचरण कर। इस प्रकार करने से तू नित्य अनासक्त तथा बन्धनमुक्त रहेगा।” यदि हम यज्ञ नहीं करते हैं और दूसरों को प्रसाद वितरित नहीं करते तो हमारे जीवन को धिक्कार है। यज्ञ कर लेने तथा आश्रितों को अर्थात् बच्चों, ब्राह्मणों तथा वृद्धों को प्रसाद वितरित कर लेने के बाद ही मनुष्य को भोजन करना चाहिए। किन्तु यदि कोई केवल अपने लिए या अपने परिवार के लिए रसोई बनाता है, तो वह तथा उसे खाने वाले धिक्कारणीय हैं। मृत्यु के बाद उसे कृमिभोजन नामक नरक में डाल दिया जाता है।



यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र  
राजन्यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यः—कोई व्यक्ति जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; स्तेयेन—चोरी से; बलात्—बलपूर्वक; वा—अथवा; हिरण्य—सोना; रत्न—रत्न; आदीनि—इत्यादि; ब्राह्मणस्य—ब्राह्मण का; वा—अथवा; अपहरति—चुराता है; अन्यस्य—अन्य का; वा—या; वानापदि—आपत्ति के समय नहीं; पुरुषः—व्यक्ति; तम्—उसको; अमुत्र—अगले जीवन में; राजन्—हे राजा; यम-पुरुषाः—यमराज के दूत; अयः-मयैः—लोहे से निर्मित; अग्नि-पिण्डैः—अग्नि में तप्त किये गये गोलों से; सन्दंशैः—संडसी से; त्वचि—चमड़ी पर; निष्कुषन्ति—टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं।

हे राजन्, जो पुरुष आपत्तिकाल न होने पर भी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी के रत्न तथा सोना लूट लेता है, वह सन्दंश नामक नरक में रखा जाता है। वहाँ पर उसकी चमड़ी संडसी और लोहे के गरम पिंडों से उतारी जाती है। इस प्रकार उसका पूरा शरीर खण्ड-खण्ड कर दिया जाता है।

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या  
लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अगम्याम्—अनुपयुक्त; स्त्रियम्—स्त्री को; अगम्यम्—अगम्य; वा—अथवा; पुरुषम्—पुरुष को; योषित्—स्त्री; अभिगच्छति—संभोग के लिए पास जाते हैं; तौ—वे दोनों; अमुत्र—अगले जीवन में; कशया—कोड़ों से; ताडयन्तः—पीटते हुए; तिग्मया—अत्यन्त तप्त; सूर्म्या—मूर्ति द्वारा; लोह-मय्या—लोह से निर्मित; पुरुषम्—पुरुष; आलिङ्गयन्ति—आलिङ्गन करते हैं; स्त्रियम्—स्त्री को; च—भी; पुरुष-रूपया—पुरुष के रूप में; सूर्म्या—मूर्ति द्वारा।

यदि कोई पुरुष या स्त्री विपरीत लिंग वाले अगम्य सदस्य के साथ संभोग करते हैं, तो मृत्यु के बाद यमराज के दूत उसे तप्तसूर्मि नामक नरक में दण्ड देते हैं। वहाँ पर ऐसे पुरुष तथा स्त्रियाँ कोड़े से पीटे जाते हैं। पुरुष को तप्तलोह की बनी स्त्री से और स्त्री को ऐसी ही पुरुष-प्रतिमा से आलिङ्गित कराया जाता है। व्यभिचार के लिए ऐसा ही दण्ड है।

तात्पर्य : सामान्यतः पुरुष को अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ संभोग नहीं करना चाहिए। वैदिक नियमों के अनुसार पराई स्त्री मातृ-तुल्य होती है और अपनी माँ, बहन तथा पुत्री के साथ संभोग करना एकदम वर्जित है। यदि कोई पराई स्त्री के साथ ऐसे अवैध सम्बन्ध रखता है, तो यह कार्य अपनी माँ के साथ प्रसंग करने के तुल्य माना जाता है। ऐसे कार्य अत्यन्त पापमय हैं। यही नियम स्त्री पर भी लागू होता है। यदि वह अपने पति को छोड़कर पर-पति से संभोग करती है, तो यह कार्य अपने पिता या पुत्र के साथ यौन-सम्बन्ध रखने के तुल्य है। अवैध स्त्री-पुरुष संभोग सदैव वर्जित

है और जो कोई ऐसा करता है उसे दण्ड भोगना पड़ता है जैसा कि इस श्लोक में वर्णित है।

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति. ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; सर्व—अभिगमः—विवेकहीन होकर पशुओं तथा मनुष्यों के साथ मैथुन करता है; तम्—उसको; अमुत्र—अगले जन्म में; निरये—नरक में; वर्तमानम्—विद्यमान; वज्रकण्टक-शाल्मलीम्—वज्र के समान काँटों वाला सेमल वृक्ष पर; आरोप्य—चढ़ाकर; निष्कर्षन्ति—नीचे की ओर खींचते हैं।

जो व्यक्ति विवेकहीन होकर—यहाँ तक कि पशुओं के साथ भी—व्यभिचार करता है उसे मृत्यु के बाद वज्रकण्टकशाल्मली नामक नरक में ले जाया जाता है। इस नरक में वज्र के समान कठोर काँटों वाला सेमल का वृक्ष है। यमराज के दूत पापी पुरुष को इस वृक्ष से लटका देते हैं और घसीटकर नीचे की ओर खींचते हैं जिससे काँटों के द्वारा उसका शरीर बुरी तरह चिथड़ जाता है।

तात्पर्य : कामेच्छा इतनी प्रबल होती है कि कभी-कभी मनुष्य गाय के साथ मैथुन करता है या स्त्री कुत्ते के साथ संभोग करती है। ऐसे पुरुषों तथा स्त्रियों को वज्रकण्टकशाल्मली नामक नरक में डाला जाता है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन अवैध यौन का निषेध करता है। इन श्लोकों में दिये गये विवरण से हम यह समझ सकते हैं कि अवैध यौन कितना पापमय कृत्य है। कभी-कभी लोगों को नरक के इन विवरणों पर विश्वास नहीं होता, किन्तु कोई माने या न माने, हर कार्य को प्रकृति के नियमों के अनुसार सम्पन्न होना है। उससे कोई बच नहीं सकता।

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून्भिन्दन्ति ते सम्प्रेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते. ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ये—जो पुरुष; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; राजन्याः—राज परिवार के सदस्य अथवा क्षत्रिय; राज-पुरुषाः—राज्याधिकारी; वा—अथवा; अपाखण्डाः—यद्यपि श्रेष्ठ कुलों में जन्म लेता है; धर्म-सेतून्—निर्दिष्ट धार्मिक नियमों की मर्यादाएँ; भिन्दन्ति—उल्लंघन करते हैं; ते—वे; सम्प्रेत्य—मरने के पश्चात्; वैतरण्याम्—वैतरणी में; निपतन्ति—गिर पड़ते हैं; भिन्न-मर्यादाः—जिन्होंने विधि विधानों को तोड़ दिया है; तस्याम्—उसमें; निरय-परिखा-भूतायाम्—नरक को घेरने वाली खाई; नद्याम्—नदी में; यादः-गणैः—हिंस्र जल-जीवों द्वारा; इतः ततः—इधर-उधर; भक्ष्यमाणाः—खाया जाकर; आत्मना—शरीर से; न—नहीं; वियुज्यमानाः—विलग किया जाकर; च—तथा; असुभिः—प्राणवायु द्वारा; उह्यमानाः—ले जाया जाकर; स्व-अघेन—अपने ही पाप कर्मों के द्वारा; कर्म-पाकम्—कुर्मों का फल; अनुस्मरन्तः—स्मरण करते हुए; विट्—मल; मूत्र—

मूत्र; पूय—पीब; शोणित—रक्त; केश—बाल; नख—नाखून; अस्थि—हड्डियाँ; मेदः—मज्जा; मांस—मांस; वसा—चर्बी; वाहिन्याम्—नदी में; उपतप्यन्ते—सन्तप्त होते रहते हैं।

जो मनुष्य श्रेष्ठ कुल—यथा क्षत्रिय, राज परिवार या अधिकारी वर्ग—में जन्म ले करके नियत नियमों के पालन की अवहेलना करता है और इस प्रकार से अधम बन जाता है, वह मृत्यु के समय वैतरणी नामक नरक की नदी में जा गिरता है। यह नदी नरक को घेरने वाली खाई के समान है और अत्यन्त हिंस्र जलजीवों से पूर्ण है। जब पापी मनुष्य को वैतरणी नदी में फेंका जाता है, तो जल के जीव उसे तुरन्त खाने लगते हैं और पापमय शरीर होने के कारण वह अपने शरीर को त्याग नहीं पाता। वह निरन्तर अपने पापमय कर्मों को स्मरण करता है और मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, मज्जा, मांस तथा चर्बी से भरी हुई उस नदी में अत्यधिक यातनाएँ पाता है।

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्या चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णाणवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥ २३ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो पुरुष; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; वृषली-पतयः—शूद्रों के पति; नष्ट—नष्ट; शौच-आचार-नियमः—सफाई, अच्छा आचरण और नियमित जीवन; त्यक्त-लज्जाः—लज्जारहित; पशु-चर्याम्—पशुओं का आचरण; चरन्ति—पालन करते हैं; ते—वे; च—भी; अपि—निस्सन्देह; प्रेत्य—मरकर; पूय—पीब; विट्—मल; मूत्र—मूत्र; श्लेष्म—श्लेष्मा; मला—लार; पूर्ण—भरा हुआ; अणवे—समुद्र में; निपतन्ति—गिरते हैं; तत्—वह; एव—एकमात्र; अतिबीभत्सितम्—अत्यन्त बीभत्स ( घृणित ); अश्नन्ति—भोजन करते हैं।

निम्नकुल में जन्मी शूद्र स्त्रियों के निर्लज्ज पति पशुओं की भाँति रहते हैं, अतः उनमें आचरण, शुचिता या नियमित जीवन का अभाव रहता है। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् पूयोद नामक नरक में फेंक दिये जाते हैं जहाँ वे मल, पीब, श्लेष्मा, लार तथा ऐसी ही अन्य वस्तुओं से पूर्ण समुद्र में रखे जाते हैं। जो शूद्र अपने को नहीं सुधार पाते वे इस सागर में गिरकर इन घृणित वस्तुओं को खाने के लिए बाध्य किये जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है—

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, केवल विषरे भाण्ड

अमृत बलिया येबा खाय

नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे

तार जन्म अदः-पते याय

उनका कथन है कि कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड मार्गों का अनुसरण करने वाले मनुष्य मानव जन्म का अवसर खोते हैं और जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। अतः सदैव सम्भावना बनी रहती है कि उसे पूयोद नरक में रखा जाय जहाँ उसे मल, मूत्र, पीब, श्लेष्मा, लार तथा अन्य घृणित पदार्थों को खाने के लिए बाध्य किया जाता है। यह उल्लेखनीय है कि यह श्लोक विशेष रूप से शूद्रों के सम्बन्ध में कहा गया है। यदि कोई शूद्र रूप में जन्म लेता है, तो उसे निरन्तर पूयोद सागर में लौट कर अत्यन्त घृणित पदार्थ खाने पड़ते हैं। अतः जन्मजात शूद्र से यह आशा की जाती है कि वह ब्राह्मण बने, यही मानव जीवन का अभिप्राय है। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह ऊपर उठे। श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (४.१३) में कहा है—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—“प्रकृति के त्रिगुणों और नियत कर्म के अनुसार चारों वर्ण मेरे द्वारा रचे गये हैं।” यदि कोई मनुष्य गुणों से शूद्र है, तो उसे चाहिए कि वह अपनी स्थिति सुधार कर ब्राह्मण पद तक पहुँचने के लिए प्रयास करे। किसी को उसे रोकना नहीं चाहिए। चाहे उस की वर्तमान स्थिति कुछ भी हो वास्तव में हर एक को वैष्णव पद तक पहुँचना है। तब वह स्वतः ब्राह्मण हो जाता है। यह तभी सम्भव है जब कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार हो, क्योंकि प्रत्येक प्राणी को हम वैष्णव पद तक लाना चाहते हैं। जैसाकि श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (१८.६६) में कहा है—*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज*—अन्य समस्त कार्यों को त्याग दो और केवल मेरी शरण में आओ। मनुष्य को चाहिए कि शूद्र, क्षत्रिय या वैश्य के वृत्तिपरक कर्मों को त्याग कर वैष्णवों के कर्तव्यों को ग्रहण करे जिसमें ब्राह्मण के कार्यों का समावेश है। इसकी व्याख्या श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* (९.३२) में इस प्रकार की है—

*मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।*

*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥*

“हे पार्थ! मेरी शरण लेकर तो जो निम्नयोनि वाले स्त्री, वैश्य और शूद्र हैं वे भी परम गति पा सकते हैं।” मानव जीवन का विशिष्ट उद्देश्य घर लौटना अर्थात् भगवान् के धाम को जाना है। यह सुविधा हर एक को मिलनी चाहिए, चाहे वह शूद्र हो या वैश्य, स्त्री हो या क्षत्रिय। *कृष्णभावनामृत* आन्दोलन का यही उद्देश्य है। किन्तु यदि कोई शूद्र बने रहने में सन्तुष्ट है, तो उसे इस श्लोक के

अनुसार यातना भोगनी होगी— तद् एवातिबीभत्सितम् अश्नन्ति ।

ये त्विह वै श्वर्गदभपतयो ब्राह्मणादयो मृगया विहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सम्परेताँल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति. ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ये—वे जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—या; श्व—कुत्तों; गर्दभ—तथा गधे के; पतयः—स्वामी; ब्राह्मण—आदयः—ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य; मृगया विहाराः—वन में आखेट करने में रुचि दिखाने वाले; अतीर्थे—बताये हुए से इतर; च—भी; मृगान्—पशुओं को; निघ्नन्ति—मारते हैं; तान्—उनको; अपि—निस्सन्देह; सम्परेतान्—मर कर; लक्ष्य-भूतान्—लक्ष्य बनाकर; यम-पुरुषाः—यमराज के दूत; इषुभिः—तीरों द्वारा; विध्यन्ति—बींथते हैं।

यदि इस जीवन में उच्च वर्ग का मनुष्य ( ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ) कुत्ते, गधे तथा खच्चर पालता है और उन्हें जंगल में आखेट करने तथा वृथा ही पशुओं को मारने में अत्यधिक रुचि लेता है, तो मृत्यु के पश्चात् वह प्राणरोध नामक नरक में डाला जाता है। वहाँ पर यमराज के दूत उसे लक्ष्य बनाकर अपने तीरों से बेध डालते हैं।

तात्पर्य : विशेषकर पाश्चात्य देशों में, सामन्त लोग जंगल में पशुओं का शिकार करने के लिए कुत्ते तथा घोड़े पालते हैं। चाहे पूर्व हो या पश्चिम, कलियुग में सामन्तवादी व्यक्ति जंगल में जाकर वृथा ही पशु-वध करते हैं। उच्च वर्ग के पुरुषों ( ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ) को ब्रह्मज्ञान का अनुशीलन करना चाहिए और शूद्रों को भी उस पद पर पहुँचने का अवसर देना चाहिए। यदि इसके बजाय वे आखेट में रत होते हैं, तो वे दण्डित होते हैं जैसाकि इस श्लोक में वर्णित है। वे यमदूतों के द्वारा न केवल बाणों से बिद्ध किये जाते हैं, वरन् पीब, मूत्र तथा मल के सागर में रखे जाते हैं।

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति. ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो पुरुष; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; दाम्भिकाः—सम्पत्ति तथा प्रतिष्ठा से गर्वित; दम्भ-यज्ञेषु—प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए किये गये यज्ञ में; पशून्—पशुओं को; विशसन्ति—मारते हैं; तान्—उनको; अमुष्मिन् लोके—अगले जगत में; वैशसे—वैशस या विशसन; नरके—नरक में; पतितान्—गिरे हुए; निरय-पतयः—यमराज के दूत; यातयित्वा—प्रचुर पीड़ा प्रदान करके; विशसन्ति—मार डालते हैं।

जो व्यक्ति इस जन्म में अपने ऊँचे पद पर गर्व करता है और केवल भौतिक प्रतिष्ठा के लिए पशुओं की बलि चढ़ाता है, उसे मृत्यु के पश्चात् वैशसन नामक नरक में रखा जाता है। वहाँ यम के दूत उसे अपार कष्ट देकर अन्त में उसका वध कर देते हैं।

**तात्पर्य :** भगवद्गीता (६.४१) में श्रीकृष्ण कहते हैं— शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते— “योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यात्माओं के लोकों में अनेक वर्षों तक सुख भोगकर सदाचारी ब्राह्मणों अथवा धनवानों के प्रतिष्ठित कुल में जन्म लेता है।” ऐसा जन्म पाकर उसे चाहिए कि भक्तियोग को परिपूर्ण बनाये। किन्तु कुसंग के कारण वह प्रायः भूल जाता है कि श्रीभगवान् ने ही उसे यह प्रतिष्ठित पद प्रदान किया है। वह अनेक प्रकार के तथाकथित यज्ञ यथा कालीपूजा या दुर्गापूजा करके इसका दुरुपयोग करता है और निरीह पशुओं की बलि चढ़ाता है। ऐसे पुरुष को किस प्रकार दण्डित किया जाता है उसका वर्णन इस श्लोक में हुआ है। इस श्लोक का एक शब्द दम्भयज्ञेषु महत्त्वपूर्ण है। यदि यज्ञ करते समय वैदिक शिक्षाओं का पालन नहीं किया जाता और केवल दिखावे के लिए पशुओं की बलि की जाती है, तो वह मृत्यु के उपरान्त दण्ड का भागी है। कलकत्ते में ऐसे अनेक कसाईघर हैं, जहाँ ऐसा मांस बिकता है जो देवी काली पर बलि चढ़ा होता है। शास्त्रों का मत है कि मास में एक बार देवी काली को छोटे बकरे की बलि दी जा सकती है। यह कहीं नहीं उल्लिखित है कि मन्दिर-पूजा के बहाने कसाईघर चलाया जाये और वृथा ही पशुओं का वध किया जाये। जो ऐसा करते हैं उन्हें दण्ड भोगना पड़ता है। जैसा कि यहाँ पर वर्णित है।

यस्त्विह वै सवर्णा भार्या द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; सवर्णाम्—उसी जाति की; भार्याम्—अपनी पत्नी को; द्विजः—उच्च जाति का व्यक्ति ( यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ); रेतः—वीर्य; पाययति—पीने को बाध्य करता है; काम-मोहितः—काम से मोहित; तम्—उसको; पाप-कृतम्—पाप करते हुए; अमुत्र—अगले जन्म में; रेतः-कुल्यायाम्—वीर्य की नदी में; पातयित्वा—फेंककर; रेतः—वीर्य; सम्पाययन्ति—पीने को बाध्य करते हैं।

यदि कोई मूर्ख द्विज ( ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ) भोगेच्छा से अपनी पत्नी को अपने वश में रखने के लिए उसे अपना वीर्य पीने को बाध्य करता है, तो मृत्यु के पश्चात् उसे लालाभक्ष नरक में रखा जाता है। वहाँ उसे वीर्य की नदी में डाल कर वीर्य पीने को विवश किया जाता है।

**तात्पर्य :** अपना वीर्य पत्नी को पीने के लिए बाध्य करना इन्द्रजाल है, जिसे अत्यन्त कामी पुरुष अपनाते हैं। उनका कहना है कि ऐसा घृणित कार्य करने से पत्नी सदैव आज्ञाकारी बनी रहती है। सामान्यतः निम्न वर्ग के पुरुष ही ऐसा करते हैं, किन्तु यदि उच्च वर्ग में जन्मा व्यक्ति ऐसा करता है, तो

उसे मृत्यु के पश्चात् लालाभक्ष नरक में ले जाया जाता है, जहाँ शुक्र नदी में डुबाकर उसे वीर्य पीने को बाध्य किया जाता है।

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य  
यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥ २७ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; दस्यवः—चोर तथा डाकू; अग्नि-दाः—आग लगाने वाले; गरदाः—विष पिलाने वाले; ग्रामान्—गाँवों को; सार्थान्—वणिक वर्ग को; वा—अथवा; विलुम्पन्ति—लूटते हैं; राजानः—राजा; राज-भटाः—अधिकारी जन; वा—अथवा; तान्—उनको; च—भी; अपि—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; परेत्य—मरने पर; यमदूताः—यमराज के दूतगण; वज्र-दंष्ट्राः—कठोर दाँतों वाले; श्वानः—कुत्ते; सप्त-शतानि—सात सौ; विंशतिः—बीस; च—और; सरभसम्—भूखड़तापूर्वक; खादन्ति—निगल जाते हैं।

इस जगत में कुछ लोगों का व्यवसाय ही लूटपाट करना है जो दूसरों के घरों में आग लगाते हैं अथवा उन्हें विष देते हैं। यही नहीं, राज्य-अधिकारी कभी-कभी वणिक जनों को आयकर अदा करने पर विवश करके तथा अन्य विधियों से लूटते हैं। मृत्यु के पश्चात् ऐसे असुरों को सारमेयादन नामक नरक में रखा जाता है। उस नरक में सात सौ बीस कुत्ते हैं जिनके दाँत वज्र के समान कठोर हैं। ये कुत्ते यमराज के दूतों के आदेश पर ऐसे पापीजनों को भूके भेड़ियों की भाँति निगल जाते हैं।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध में यह कहा गया है कि इस कलिकाल में प्रत्येक व्यक्ति तीन प्रकार की विपत्तियों से पीड़ित रहेगा—वर्षा का अभाव, दुर्भिक्ष तथा राज्य द्वारा अधिक कर वसूली। चूँकि मनुष्य अधिकाधिक पापी होते जा रहे हैं, इसलिए वर्षा का अभाव होगा जिससे अन्न नहीं उपजेगा। दुर्भिक्ष के कारण उत्पन्न लोगों का कष्ट कम करने के बहाने सरकार व्यवसायी वर्ग पर विशेष रूप से भारी कर लगायेगी। इस श्लोक में कहा गया है कि ऐसी सरकार के अधिकारी दस्यु अथवा चोर होते हैं। इनका मुख्य काम होगा लोगों की सम्पत्ति लूटना। चाहे वह राजमार्ग का लुटेरा हो या राजकीय चोर, ऐसे व्यक्ति को अगले जीवन में सारमेयादन नामक नरक में गिराकर दण्डित किया जायेगा जहाँ उसे नृशंस कुत्ते काटेंगे।

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा  
निरवकाशे योजनशतोच्छ्रयादिगिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते  
तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति. ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अनृतम्—असत्य, झूठ; वदति—बोलता है; साक्ष्ये—साक्षी देने में;  
द्रव्य-विनिमये—वस्तुओं के आदान-प्रदान में; दाने—दान देने में; वा—अथवा; कथञ्चित्—किसी प्रकार; सः—वह व्यक्ति;  
वै—निस्संदेह; प्रेत्य—मरकर; नरके—नरक में; अवीचिमति—अवीचिमत् नामक ( जिसमें जल नहीं है ); अधः-शिराः—  
अधोमुख; निरवकाशे—आधारहीन; योजन-शत—आठ सौ मील की; उच्छ्रयात्—ऊँचाई वाला; गिरि—पर्वत की; मूर्ध्नः—  
चोटी से; सम्पात्यते—फेंक दिया जाता है; यत्र—जहाँ; जलम् इव—जल सदृश; स्थलम्—स्थल, भूमि; अश्म-पृष्ठम्—पथरीली  
सतह वाले; अवभासते—प्रतीत होता है; तत्—वह; अवीचिमत्—बिना जल या लहरों वाला; तिलशः—तिल के बीजों सदृश  
सूक्ष्म खंडों में; विशीर्यमाण—फाड़ा जा करके; शरीरः—देह; न म्रियमाणः—न मरने वाले; पुनः—फिर; आरोपितः—चोटी  
तक उठा हुआ; निपतति—नीचे गिरती है।

इस जीवन में जो व्यक्ति किसी की झूठी गवाही देने, व्यापार करते अथवा दान देते समय  
किसी भी तरह का झूठ बोलता है, वह मरने पर यमराज के दूतों द्वारा बुरी तरह से प्रताड़ित  
किया जाता है। ऐसा पापी व्यक्ति आठ सौ मील ऊँचे पर्वत की चोटी से मुँह के बल अवीचिमत्  
नामक नरक में नीचे फेंक दिया जाता है। इस नरक का कोई आधार नहीं होता और उस की  
पथरीली भूमि जल की लहरों के समान प्रतीत होती है, किन्तु इसमें जल नहीं है; इसलिए इसे  
अवीचिमत् ( जलरहित ) कहा गया है। वहाँ से बारम्बार गिराये जाने से उस पापी व्यक्ति के शरीर  
के छोटे छोटे टुकड़े हो जाने पर भी प्राण नहीं निकलते और उसे बारम्बार दण्ड सहना पड़ता है।

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां  
निरयं नीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति. ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्संदेह; विप्रः—विद्वान ब्राह्मण; राजन्यः—क्षत्रिय; वैश्यः—वैश्य; वा—  
अथवा; सोम-पीथः—सोमरस पान करते हैं; तत्—उसकी; कलत्रम्—स्त्री; वा—अथवा; सुराम्—मदिरा; व्रत-स्थः—व्रत  
रखने वाला; अपि—निश्चय ही; वा—अथवा; पिबति—पीता है; प्रमादतः—मोहवश; तेषाम्—उन सबों को; निरयम्—नरक  
तक; नीतानाम्—लाया जाकर; उरसि—वक्षस्थल पर; पदा—पैर से; आक्रम्य—प्रहार कर; अस्ये—मुँह में; वह्निना—अग्नि से;  
द्रवमाणम्—पिघलाया; कार्ष्णायसम्—लोह; निषिञ्चन्ति—उड़ेलते हैं।

जो ब्राह्मणी या ब्राह्मण मद्यपान करता है उसे यमराज के दूत अयःपान नामक नरक में ले  
जाते हैं। यदि कोई क्षत्रिय, वैश्य अथवा व्रत धारण करने वाला मोहवश सोमपान करता है, तो  
वह भी इस नरक में स्थान पाता है। अयःपान नरक में यम के दूत उनकी छाती पर चढ़ कर उनके  
मुँह के भीतर तप्त पिघला लोहा उड़ेलते हैं।

तात्पर्य : मनुष्य को केवल नाम का ही ब्राह्मण नहीं होना चाहिए और न ही सभी प्रकार के



पापकर्म, विशेष रूप से मद्यपान करना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जनों को चाहिए कि अपने वर्णानुसार आचरण करें। यदि वे पतित होकर मद्यपान के आदी अर्थात् शूद्र बन जाते हैं, तो उन्हें यहाँ वर्णित विधि से दण्डित किया जाएगा।

अथ च यस्त्विह वा आत्मसम्भावेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

अथ—आगे; च—भी; यः—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—या; आत्म-सम्भावेन—झूठी प्रतिष्ठा से; स्वयम्—स्वयं; अधमः—अत्यन्त नीच; जन्म—जन्म; तपः—तप; विद्या—ज्ञान; आचार—सद-आचरण; वर्ण-आश्रम-वतः—वर्णाश्रम के नियमों का कठोरता से पालन करते हुए; वरीयसः—अधिक आदरणीय का; न—नहीं; बहु—अधिक; मन्येत—आदर करता है; सः—वह; मृतकः—मृत शरीर; एव—मात्र; मृत्वा—मरने के बाद; क्षारकर्दमे—क्षारकर्दम नामक; निरये—नरक में; अवाक्-शिरा—अधोमुख; निपातितः—गिराया जाकर; दुरन्ताः यातनाः—अत्यन्त वेदनामयी स्थिति; हि—निस्सन्देह; अश्नुते—भोगता है।

जो निम्न जाति में उत्पन्न होकर घृणित होते हुए भी इस जीवन में यह सोच कर झूठा गर्व करता है कि “मैं महान् हूँ” और उच्च जन्म, तप, शिक्षा, आचार, जाति अथवा आश्रम में अपने से बड़ों का उचित आदर नहीं करता वह इसी जीवन में मृत-तुल्य है और मृत्यु के पश्चात् क्षारकर्दम नरक में सिर के बल नीचे गिराया जाता है। वहाँ उसे यमदूतों के हाथों से अत्यन्त कठिन यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।

तात्पर्य : मनुष्य को चाहिए कि वह झूठा गर्व न करे। उसे चाहिए कि जन्म, शिक्षा, आचरण, जाति अथवा आश्रम में अपने से उच्चतर व्यक्ति के प्रति आदर-भाव दिखाए। यदि वह ऐसा नहीं करता और झूठा गर्व करता है, तो उसे क्षारकर्दम नरक में दण्ड सहना पड़ता है।

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायासृक्पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; पुरुषाः—व्यक्ति; पुरुष-मेधेन—नरबलि द्वारा; यजन्ते—आराधना ( देवी काली या भद्रकाली की ) करते हैं; याः—जो; च—तथा; स्त्रियः—स्त्रियाँ; नृ-पशून्—बलि चढ़ाये जाने वाले मनुष्य; खादन्ति—खाते हैं; तान्—उनको; च—तथा; ते—वे; पशवः इव—पशुओं के सदृश; निहताः—मारे जाकर; यम-सदने—यमराज के धाम में; यातयन्तः—दण्ड देते हुए; रक्षः-गणाः—राक्षस होकर; सौनिकाः—मानने वाले; इव—इदृश; स्वधितिना—तलवार से; अवदाय—खण्ड-खण्ड करके; असृक्—रक्त; पिबन्ति—पीते हैं; नृत्यन्ति—नाचते हैं; च—तथा; गायन्ति—गाते हैं; च—भी; हृष्यमाणाः—प्रसन्न होकर; यथा—जिस प्रकार; इह—इस लोक में; पुरुष-अदाः—मनुष्य-भक्षी।

इस संसार में ऐसे भी पुरुष तथा स्त्रियाँ हैं, जो भैरव या भद्रकाली को नर-बलि चढ़ाकर अपने द्वारा बलि किए गये शिकार का मांस खाते हैं। ऐसे यज्ञ करने वालों को मृत्यु के पश्चात् यमलोक में ले जाया जाता है जहाँ उनके शिकार ( मारे गये व्यक्ति ) राक्षस का रूप धारण करके अपनी तेज तलवारों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। जिस प्रकार इस लोक में नर-भक्षकों ने नाचते गाते हुए अपने शिकार का रक्तपान किया था उसी तरह उनके शिकार अब अपने वध करने वालों का रक्तपान करके आनन्दित होते हैं।

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य  
जिजीविषून्शूलसूत्रादिषूप्रोतान्क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः  
क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अनागसः—निर्दोष; अरण्ये—वन में; ग्रामे—गाँव में; वा—अथवा; वैश्रम्भकैः—श्रद्धा के द्वारा; उपसृतान्—पास लाये जाकर; उपविश्रम्भय्य—विश्वास के साथ प्रेरणा देकर; जिजीविषून्—जो रक्षित होना चाहते हैं; शूल-सूत्र-आदिषु—बर्छा, धागा आदि पर; उपप्रोतान्—लगा हुआ; क्रीडनकतया—गेंद के सदृश; यातयन्ति—पीड़ा पहुँचाते हैं; ते—वे पुरुष; अपि—निश्चय ही; च—तथा; प्रेत्य—मरने के पश्चात्; यम-यातनासु—यमराज की यातनाएँ; शूल-आदिषु—बर्छे आदि पर; प्रोत-आत्मानः—जिनके शरीर जड़ दिये गये हैं; क्षुत्-तृड्भ्याम्—भूख तथा प्यास से; च—भी; अभिहताः—अभिभूत; कङ्क-वट-आदिभिः—बगुला तथा गीध जैसे पक्षियों द्वारा; च—तथा; इतः ततः—इधर-उधर; तिग्म-तुण्डैः—तीखी चोंचों वाले; आहन्यमानाः—मारे जाकर; आत्म-शमलम्—अपने पापकर्मों को; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं।

इस जीवन में कुछ व्यक्ति गाँव या वन में रक्षा के लिए आये हुए पशुओं तथा पक्षियों को शरण देते हैं और उन्हें अपनी सुरक्षा का विश्वास हो जाने के बाद उन्हें बर्छे या डोरे में फाँस कर घोर पीड़ा पहुँचाकर उनसे खिलौने जैसा खेलते हैं। ऐसे व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् यमराज के दूतों द्वारा शूलप्रोत नामक नरक में ले जाये जाते हैं जहाँ उनके शरीरों को तीक्ष्ण चुकीले भालों से छेदा जाता है। वे भूख तथा प्यास से तड़पते रहते हैं और उनके शरीरों को गीध तथा बगुले जैसे तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी चारों ओर से नोंचते हैं। इस प्रकार से यातना पाकर उन्हें पूर्वजन्म में किये गये पाप-कर्मों का स्मरण होता है।

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति  
यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वै—निस्सन्देह; भूतानि—जीवात्माओं को; उद्वेजयन्ति—वृथा ही पीड़ा पहुँचाते हैं; नराः—मनुष्य; उल्बण-स्वभावाः—स्वभाव से क्रोधी; यथा—जिस प्रकार; दन्दशूकाः—सर्प; ते—वे; अपि—भी; प्रेत्य—मरने के बाद; नरके—नरक में; दन्दशूक-आख्ये—दन्दशूक नामक; निपतन्ति—गिरते हैं; यत्र—जहाँ; नृप—हे राजन्; दन्दशूकाः—सर्प; पञ्च-मुखाः—पाँच फणों वाले; सप्त-मुखाः—सात फण वाले; उपसृत्य—ऊपर पहुँच कर; ग्रसन्ति—खा जाते हैं; यथा—जिस तरह; बिलेशयान्—चूहों को।

जो व्यक्ति इस जीवन में ईर्ष्यालु सर्पों के समान क्रोधी स्वभाव वाले अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् दन्दशूक नामक नरक में गिरते हैं। हे राजन्, इस नरक में पाँच या सात फण वाले सर्प हैं, जो इन पापात्माओं को उसी प्रकार खा जाते हैं जिस प्रकार चूहों को सर्प खाते हैं।

ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथामुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति. ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

ये—जो पुरुष; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अन्ध-अवट—अंधकूप; कुसूल—अन्न भण्डार, खत्ती; गुह-आदिषु—तथा गुफाओं आदि में; भूतानि—जीवात्माओं को; निरुन्धन्ति—रोके रखते हैं, बन्दी बनाए रखते हैं; तथा—उसी प्रकार; अमुत्र—अगले जीवन में; तेषु—उन-उन स्थानों में; एव—निश्चय ही; उपवेश्य—घुसाकर; सगरेण—विषाक्त धुएँ से; वह्निना—अग्नि से; धूमेन—धुआँ से; निरुन्धन्ति—बन्दी बनाए रखते हैं।

जो व्यक्ति इस जीवन में अन्य जीवों को अन्धे कुएँ, खत्ती या पर्वत की गुफाओं में बन्दी बनाकर रखते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् अवट-निरोधन नामक नरक में रखे जाते हैं। वहाँ वे स्वयं अंधे कुओं में धकेल दिये जाते हैं, जहाँ विषैले धुएँ से उनका दम घुटता है और वे घोर यातनाएँ उठाते हैं।

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृधाः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति. ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; इह—इस जीवन में; वा—अथवा; अतिथीन्—अतिथियों को; अभ्यागतान्—अभ्यागतों ( आने वालों ) को; वा—अथवा; गृह-पतिः—गृहस्थ; असकृत्—अनेक बार; उपगत—प्राप्त करके; मन्युः—क्रोध; दिधक्षुः—जलाने का इच्छुक; इव—सदृश; पापेन—पापपूर्ण; चक्षुषा—नेत्रों द्वारा; निरीक्षते—दृष्टि डालता है; तस्य—उसका; च—तथा; अपि—निश्चय ही; निरये—नरक में; पाप-दृष्टेः—पापपूर्ण दृष्टि वाले की; अक्षिणी—आँखें, नेत्र; वज्र-तुण्डाः—वज्र के समान बलिष्ठ चोंच वाले; गृधाः—गीध; कङ्क—कंक ( बगुले ); काक—काँवे; वट-आदयः—तथा अन्य पक्षी; प्रसह्य—आक्रामक रूप से; उरु-बलात्—अत्यन्त बलपूर्वक; उत्पाटयन्ति—बाहर निकाल लेते हैं।

जो गृहस्थ अपने घर आये अतिथियों अथवा अभ्यागतों को क्रोध भरी कुटिल दृष्टि से देखता है मानो उन्हें भस्म कर देगा, उसे पर्यावर्तन नामक नरक में ले जाकर रखा जाता है जहाँ उसे वज्र

जैसी चोंच वाले गीध, बगुले, कौवे तथा इसी प्रकार के अन्य पक्षी घूरते हैं और सहसा झपट कर तेजी से उनकी आँखें निकाल लेते हैं।

तात्पर्य : वैदिक शिष्टाचार के अनुसार, यदि गृहस्थ के घर उनका शत्रु भी पधारे तो उसे ऐसी विनम्रता से मिलना चाहिए कि वह भूल जाये कि वह अपने शत्रु के घर आया है। घर आये अतिथि का विनम्रतापूर्वक स्वागत करना चाहिए। यदि वह अवांछित है, तो गृहस्थ को चाहिए कि उसको घूरे नहीं, क्योंकि जो ऐसा करता है, वह मरने पर पर्यावर्तन नामक नरक में रखा जाता है, जहाँ गीध, कौवे जैसे अनेक भयानक पक्षी उस पर सहसा टूट पड़ेंगे और उसकी आँखें निकाल लेंगे।

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो व्यक्ति; तु—लेकिन; इह—इस लोक में; वा—अथवा; आढ्य-अभिमतिः—सम्पत्ति के कारण गर्वीला; अहङ्कृतिः—अभिमानि; तिर्यक्-प्रेक्षणः—कुटिल दृष्टि वाला; सर्वतः अभिविशङ्की—सदैव अन्यों के द्वारा, यहाँ तक कि अपने से श्रेष्ठ जनों द्वारा भी, ठगे जाने से सशंकित; अर्थ-व्यय-नाश-चिन्तया—व्यय तथा क्षति के विचार के कारण; परिशुष्यमाण—सूख गया है जो; हृदय-वदनः—जिसका हृदय तथा मुख; निर्वृतिम्—प्रसन्नता; अनवगतः—न प्राप्त करके; ग्रहः—भूत; इव—सदृश; अर्थम्—सम्पत्ति; अभिरक्षति—रखवाली करता है; सः—वह; च—भी; अपि—निस्सन्देह; प्रेत्य—मरने के बाद; तत्—उस धन का; उत्पादन—आय का; उत्कर्षण—वृद्धि; संरक्षण—सुरक्षा; शमल-ग्रहः—पाप-कर्मों को स्वीकार करता हुआ; सूचीमुखे—सूचीमुख नामक; नरके—नरक में; निपतति—गिर जाता है; यत्र—जहाँ; ह—निस्संदेह; वित्त-ग्रहम्—धन हरने वाले भूत की तरह; पाप-पुरुषम्—अत्यन्त पापी मनुष्य को; धर्मराज-पुरुषाः—धर्मराज के दूत; वायकाः इव—चतुर दर्जियों की भाँति; सर्वतः—सर्वत्र; अङ्गेषु—शरीर के अंगों पर; सूत्रैः—धागे के द्वारा; परिवयन्ति—सिलते हैं।

जो व्यक्ति इस लोक में अथवा इस जीवन में अपनी सम्पत्ति पर अभिमान करता है, वह सदैव सोचता रहता है कि वह कितना धनी है और कोई उसकी बराबरी कर सकता है क्या? उसकी नजर टेढ़ी हो जाती है और वह सदैव भयभीत रहता है कि कोई उसकी सम्पत्ति ले न ले। वह अपने से बड़े लोगों पर आशंका करता है। अपनी सम्पत्ति की हानि के विचार मात्र से उसका मुख तथा हृदय सूखने लगते हैं, अतः वह सदैव अति अभागे दुष्ट मनुष्य की तरह लगता है। उसे वास्तविक सुख-लाभ नहीं हो पाता और वह यह नहीं जानता कि चिन्तामुक्त जीवन कैसा होता है। धन अर्जित करने, उसको बढ़ाने तथा उसकी रक्षा के लिए वह जो पापकर्म करता है उसके कारण उसे सूचीमुख नामक नरक में रखा जाता है जहाँ यमराज के दूत उसके सारे शरीर को

दर्जियों की तरह धागे से सिल देते हैं।

तात्पर्य : जब किसी के पास आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति हो जाती है, तो वह निश्चय ही घमंडी बन जाता है। आधुनिक सभ्यता में मनुष्यों की यही स्थिति है। वैदिक संस्कृति के अनुसार ब्राह्मणों के पास कुछ भी नहीं होता, जबकि क्षत्रियों के पास काफी धनसम्पदा होती है किन्तु वह भी केवल शास्त्रों के आदेशानुसार यज्ञ तथा अन्य सत्कर्म करने के लिए होती है। वैश्य भी कृषि, गोपालन तथा व्यापार से ईमानदारी के साथ धन कमाता है। किन्तु यदि शूद्र को धन प्राप्त हो जाता है, तो वह उसका बिना सूझबूझ के अपव्यय करता है या फिर संचय करता है जो उसके काम नहीं आता। चूँकि इस युग में सुपात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य नहीं हैं, अतः प्रायः प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है ( कलौ शूद्र-सम्भवः )। फलस्वरूप शूद्र-मानसिकता से आधुनिक सभ्यता को भारी क्षति पहुँच रही है। शूद्र यह नहीं जानता कि भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति के लिए धन का किस प्रकार उपयोग किया जाये। धन को लक्ष्मी भी कहते हैं और लक्ष्मी जी सदैव नारायण की सेवा में संलग्न रहती हैं। अतः जहाँ भी धन हो, उसे भगवान् नारायण की सेवा में लगाना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह धन का उपयोग कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रसार में करे। यदि वह धन का उपयोग इस कार्य के लिए नहीं करता और आवश्यकता से अधिक धन-संग्रह करता है, तो अवैध सम्पत्ति के कारण उसे गर्व हो जाता है। यह धन वास्तव में श्रीकृष्ण का है जैसाकि भगवद्गीता (५.२९) में उन्होंने कहा है— भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्—“समस्त यज्ञों एवं तपों का वास्तविक भोक्ता मैं हूँ और मैं ही समस्त लोकों का स्वामी हूँ।” अतः सब कुछ श्रीकृष्ण का है। कुछ भी किसी और का नहीं है। जिसके पास आवश्यकता से अधिक धन है उसको श्रीकृष्ण के लिए खर्च करना चाहिए। मनुष्य यदि ऐसा नहीं करता तो वह अपनी झूठी सम्पत्ति के कारण गर्व से फूल उठेगा, अतः अगले जन्म में उसे दण्डित होना पड़ेगा।

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति. ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधा:—इस प्रकार के; नरका:—अनेक नरक; यम-आलये—यमराज के लोक में; सन्ति—हैं; शतश:—सैकड़ों; सहस्रश:—हजारों; तेषु—उन लोकों में; सर्वेषु—सबों में; च—भी; सर्वे—सभी; एव—निस्संदेह; अधर्म-वर्तिन:—पुरुष जो वैदिक नियमों या विधि-विधानों का पालन नहीं करते; ये केचित्—जो भी; इह—यहाँ; उदिता:—वर्णित; अनुदिता:—जिनका वर्णन नहीं हुआ है; च—तथा; अविनि-पते—हे राजन्; पर्यायेण—विभिन्न प्रकार पापकर्मों के अनुसार; विशन्ति—प्रवेश करते हैं; तथा एव—उसी प्रकार; धर्म-अनुवर्तिन:—जो पवित्र हैं और वैदिक आदेशों के अनुसार कार्य करते हैं; इतरत्र—अन्यत्र; इह—इस लोक में; तु—लेकिन; पुन:—भवे—दूसरे जन्म में; ते—वे सब; उभय-शेषाभ्याम्—पुण्यों अथवा पापों के फल के शेष भाग से; निविशन्ति—प्रवेश करते हैं।

हे राजन्, यमलोक में इसी प्रकार के सैकड़ों-हजारों नरक हैं। मैंने जिन पापी मनुष्यों का वर्णन किया है—और जिनका वहाँपर उल्लेख नहीं हुआ—वे सब अपने पापों की कोटि के अनुसार इन विभिन्न नरकों में प्रवेश करेंगे। किन्तु जो पुण्यात्मा हैं, वे अन्य लोकों में, अर्थात् देवताओं के लोकों में जाते हैं। तो भी, अपने पुण्य-पाप के फलों के क्षय होने पर पुण्यात्मा तथा पापी दोनों ही पुनः पृथ्वी पर लौट आते हैं।

तात्पर्य : इसी वर्णन से भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के उपदेश प्रारम्भ होते हैं—*तथा देहान्तर-प्राप्तिः*—इस भौतिक जगत में प्रत्येक प्राणी विभिन्न लोकों में एक देह से दूसरे में परिवर्तित होने के लिए आया है। ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः—सतो गुणी उच्च लोकों की जाते हैं। अधो गच्छन्ति तामसाः—इसी प्रकार जो तामसी हैं, वे नरक लोकों में प्रवेश करते हैं। किन्तु ये दोनों प्रकार के प्राणी जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमते रहते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि पवित्रात्मा भी स्वर्गलोक में सुखोपभोग के पश्चात् पृथ्वी पर लौटते हैं ( *क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति* )। अतः एक लोक से दूसरे में गमन करने से जीवन की समस्याओं का अन्त नहीं हो जाता। वे तो तभी हल हो सकती हैं जब हमें यह भौतिक देह फिर धारण न करनी पड़े। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई कृष्णभावनाभावित हो जाये। जैसाकि स्वयं श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता (४.९) में कहा है—

*जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।*

*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥*

“हे अर्जुन! जो मेरे आविर्भाव तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह देह को त्याग कर संसार में फिर से जन्म नहीं लेता, वरन् मेरे सनातन धाम को प्राप्त होता है।” यही जीवन की सिद्धि और जीवन की समस्याओं का सही हल है। हमें न तो उच्चलोकों में जाने के लिए उत्सुक होना चाहिए, न ही ऐसा कर्म करना चाहिए कि नरक में जाना पड़े। इस भौतिक जगत का पूर्ण उद्देश्य तभी प्राप्त होगा जब हम अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त करके भगवान् के धाम वापस जा सकें। ऐसा करने

का सरलतम उपाय पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा निर्दिष्ट किया गया है सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज। मनुष्य को न तो पवित्र, न ही अपवित्र होना चाहिए। उसे भक्त होना चाहिए और श्रीकृष्ण के चरणकमलों में समर्पित होना चाहिए। समर्पण की विधि भी सरल ही है। इसे एक बालक भी कर सकता है—मन्मना भव भद्रभक्तो मद्याजी मां नमस्करु। मनुष्य को चाहिए कि वह सदैव श्रीकृष्ण का ही चिन्तन “हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे” का कीर्तन करते हुए करे। मनुष्य को चाहिए कि वह श्रीकृष्ण का भक्त बने, उनकी आराधना करे और उन्हें नमस्कार करे। इस प्रकार उसे अपने जीवन के समस्त कार्यों को भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में अर्पित करना चाहिए।

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः; एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद. ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

निवृत्ति-लक्षण-मार्गः—त्याग अथवा मुक्ति का मार्ग; आदौ—प्रारम्भ में (द्वितीय तथा तृतीय स्कन्धों में); एव—निस्संदेह; व्याख्यातः—कहा जा चुका है; एतावान्—यह सब; एव—निश्चय ही; अण्ड-कोशः—यह ब्रह्माण्ड जो एक बृहद् अंडे के सदृश है; यः—जो; चतुर्दश-धा—चौदह खण्डों में; पुराणेषु—पुराणों में; विकल्पितः—विभक्त; उपगीयते—वर्णित; यत्—जो; तत्—वह; भगवतः—श्रीभगवान् का; नारायणस्य—नारायण का; साक्षात्—प्रत्यक्ष; महा-पुरुषस्य—परम पुरुष का; स्थविष्ठम्—स्थूल; रूपम्—रूप; आत्म-माया—अपनी शक्ति का; गुण—गुणों का; मयम्—युक्त; अनुवर्णितम्—वर्णित; आदृतः—आदरपूर्वक; पठति—पढ़ता है; शृणोति—अथवा सुनता है; श्रावयति—अथवा व्याख्या करता है; सः—वह पुरुष; उपगेयम्—गीत; भगवतः—श्रीभगवान् का; परमात्मनः—परमात्मा का; अग्राह्यम्—जिसका समझ पाना कठिन है; अपि—यद्यपि; श्रद्धा—श्रद्धा; भक्ति—तथा भक्ति से; विशुद्ध—शुद्ध; बुद्धिः—जिसकी बुद्धि; वेद—जानती है।

प्रारम्भ में (द्वितीय तथा तृतीय स्कन्ध में) मैं यह बता चुका हूँ कि मुक्तिमार्ग पर किस प्रकार अग्रसर हुआ जा सकता है। पुराणों में चौदह खण्डों में विभक्त अंड सदृश विशाल ब्रह्माण्ड की स्थिति का वर्णन किया गया है। यह विराट रूप भगवान् का बाह्य शरीर माना जाता है, जिसकी उत्पत्ति उनकी शक्ति और गुणों से हुई है। इसे ही सामान्यतः विराट रूप कहते हैं। यदि कोई श्रद्धा सहित भगवान् के इस बाह्य रूप का वर्णन पढ़ता है, अथवा इसके विषय में सुनता या फिर अन्यो को भागवत धर्म अथवा कृष्णभावनामृत समझाता है, तो आत्म-चेतना अथवा कृष्णभावनामृत में उनकी श्रद्धा तथा भक्ति क्रमशः बढ़ती जाती है। यद्यपि इस भावना को विकसित कर पाना कठिन है, किन्तु इस विधि से मनुष्य अपने को शुद्ध कर सकता है और



धीरे-धीरे परम सत्य को जान सकता है।

तात्पर्य : कृष्णभावनामृत आन्दोलन द्वारा श्रीमद्भागवतम् का प्रकाशन विशेषतः आधुनिक सभ्य मानवों के लाभार्थ किया जा रहा है, जिससे वह मूल भावना को जाग्रत कर सके। इस चेतना के बिना मनुष्य पूर्ण अंधकार में भटकता है। मनुष्य चाहे स्वर्ग को जाये या नरक को, वह अपना समय नष्ट ही करता है। अतः उसे चाहिए कि श्रीमद्भागवत में वर्णित भगवान् के विराट रूप के विषय में सुने। इससे वह अपने आपको बद्ध जीवन से बचा सकेगा और धीरे-धीरे मुक्तिमार्ग की ओर उठते हुए भगवान् के धाम को वापस जा सकेगा।

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ।

स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर( गुरु-परम्परा से ); स्थूलम्—स्थूल; तथा—और; सूक्ष्मम्—सूक्ष्म; रूपम्—रूप; भगवतः—श्रीभगवान् का; यतिः—संन्यासी या भक्त; स्थूले—स्थूल रूप; निर्जितम्—विजित; आत्मानम्—मन को; शनैः—धीरे-धीरे; सूक्ष्मम्—भगवान् के सूक्ष्म रूप में; धिया—बुद्धि से; नयेत्—ले जाना चाहिए; इति—इस प्रकार।

जो मुक्ति का इच्छुक है, मुक्ति के पथ को ग्रहण करता है तथा बद्ध जीवन के प्रति आकृष्ट नहीं होता, वह यती या भक्त कहलाता है। ऐसे पुरुष को पहले भगवान् के स्थूल विराट रूप का चिन्तन करते हुए मन को वश में करना चाहिए और तब धीरे-धीरे श्रीकृष्ण के दिव्य रूप ( सत्-चित्-आनन्द-विग्रह ) का चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार उसका मन समाधि में स्थिर हो जाता है। भक्ति के द्वारा भगवान् के सूक्ष्म रूप का साक्षात्कार किया जा सकता है और यही भक्तों का गन्तव्य है। इस प्रकार उसका जीवन सफल बन जाता है।

तात्पर्य : कहा गया है कि—महत्सेवां द्वारं आहुर्विमुक्तेः—यदि कोई मुक्तिमार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है, तो उसे महात्माओं या मुक्त भक्तों की संगति करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी संगति में श्रीभगवान् के नाम, रूप, गुण तथा साज-सामग्री के सम्बन्ध में श्रवण, वर्णन तथा कीर्तन का अवसर प्राप्त होता है जिन सबका वर्णन श्रीमद्भागवत में हुआ है। बन्धन पथ पर सदैव जन्म-मृत्यु का चक्कर लगा रहता है। जो इस बन्धन से मुक्ति चाहता है उसे अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ में सम्मिलित हो जाना चाहिए और भक्तों से श्रीमद्भागवत सुनने का लाभ उठाना चाहिए तथा कृष्णभावनामृत का प्रसार करने के लिए इसका वर्णन भी करना चाहिए।



भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-

पातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।

गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य

स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

भू—पृथ्वीलोक; द्वीप—तथा अन्य लोक; वर्ष—भूभाग; सरित्—नदियाँ; अद्रि—पर्वत; नभः—आकाश; समुद्र—सागर; पाताल—नीचे के लोक; दिक्—दिशाएँ; नरक—समस्त नरक लोक; भागण-लोक—नक्षत्र तथा उच्चतर लोक; संस्था—स्थिति; गीता—वर्णित; मया—मेरे द्वारा; तव—तुम्हारे लिए; नृप—हे राजन्; अद्भुतम्—विचित्र; ईश्वरस्य—श्रीभगवान् का; स्थूलम्—स्थूल; वपुः—शरीर; सकल-जीव-निकाय—समस्त जीव समुदायों का; धाम—आवास ।

हे राजन्, अभी मैंने तुमसे इस पृथ्वीलोक, अन्य लोक, उनके वर्ष, नदी एवं पर्वत का वर्णन किया है। मैंने आकाश, समुद्र, अधोलोक, दिशाएँ, नरक, ग्रह तथा नक्षत्रों का भी वर्णन किया है। ये भगवान् के विराट रूप के अवयव हैं, जिन पर समस्त जीवात्माएँ आश्रित हैं। इस प्रकार मैंने भगवान् के बाह्य शरीर के अद्भुत विस्तार की व्याख्या की है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “नारकीय लोकों का वर्णन” नामक छब्बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

—होनोलुलु के पंचतत्त्व मंदिर में दिनांक ५ जून, १९७५ को सम्पूर्ण हुआ।

गौड़ीय भाष्य में श्रीकृष्णकृपामूर्ति भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजी महाराज के द्वारा लिखी गई एक पूरक टिप्पणी है। उसका अनुवाद इस प्रकार है—

जिन विद्वानों को समस्त वैदिक शास्त्रों का ज्ञान है वे यह मानते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के असंख्य अवतार हैं। इन अवतारों की दो श्रेणियाँ की गई हैं—प्राभव तथा वैभव। शास्त्रों के अनुसार प्राभव अवतारों की भी दो श्रेणियाँ हैं—अनन्त तथा अवर्णित। श्रीमद्भागवत के पंचम स्कंध में तृतीय से लेकर षष्ठम अध्याय तक ऋषभदेव का वर्णन है, किन्तु उनके सत् रूप का विस्तृत वर्णन नहीं हुआ है। अतः उन्हें प्राभव अवतारों में दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत (अवर्णित) माना जाता है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध, अध्याय तीन, श्लोक तेरह में कहा गया है—

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।

दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥

“भगवान् विष्णु आठवें अवतार में महाराज नाभि (आग्निध्र के पुत्र) तथा उनकी पत्नी मेरुदेवी के पुत्र के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने सिद्धि, जीवन की परमहंस अवस्था का मार्ग दिखलाया जिसकी उपासना वर्णाश्रम धर्म के सभी पालन करने वालों द्वारा की जाती है।” ऋषभदेव श्रीभगवान् हैं और उनका शरीर दिव्य सच्चिदानन्दविग्रह है। अतः यह पूछा जा सकता है कि वे मल-मूत्र किस प्रकार विसर्जित करते होंगे? इस प्रश्न का उत्तर गौड़ीय वेदान्त आचार्य बलदेव विद्या-भूषण ने अपनी पुस्तक *सिद्धान्त-रत्न* (प्रथम भाग मूलपाठ ६५-६८) में दिया है। जो पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं, वे अभक्तों का ध्यान ऋषभदेव द्वारा मलमूत्र विसर्जित करने की ओर आकर्षित करते हैं, क्योंकि वे दिव्य शरीर के सत्-चित्-आनन्द-विग्रह को नहीं समझ पाते। *श्रीमद्भागवत* के पंचम स्कन्ध (५.६.११) में इस युग के मोहग्रस्त तथा भ्रमित स्थिति वाले भौतिकतावादियों का पूरी तरह वर्णन हुआ है। पंचम स्कंध में ही अन्यत्र (५.५.१९) में ऋषभदेव ने कहा है—*इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं*, “मेरा यह शरीर भौतिकतावादियों के लिए अचिन्त्य है।” भगवान् श्रीकृष्ण ने *भगवद्गीता* में भी (१.११) इसकी पुष्टि की है—

*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।*

*परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥*

“मेरे मानव रूप में अवतरित होने पर मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मुझ परमेश्वर के दिव्य स्वभाव को तथा सब पर मेरे परम प्रभुत्व को नहीं जानते।” पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के मानवीय रूप को समझ पाना अत्यन्त दुष्कर है और सामान्य व्यक्ति के लिए तो यह अचिन्त्य है। इसलिए ऋषभदेव ने स्वतः बताया है कि उनका शरीर आत्ममय (सत्-चित्-आनन्द-विग्रह) है। इसलिए वे मलमूत्र विसर्जित नहीं करते थे। यद्यपि वे ऊपर से मल-मूत्र विसर्जित करते प्रतीत होते थे, किन्तु वह भी दिव्य होने के कारण सामान्य मनुष्य द्वारा अनुकरणीय नहीं है। *श्रीमद्भागवत* में यह भी कहा है कि ऋषभदेव का मल-मूत्र दिव्य सुगन्धि से युक्त था। भले ही कोई ऋषभदेव का अनुकरण कर ले, किन्तु वह सुगन्धित मल विसर्जित नहीं कर सकता।

अतः ऋषभदेव के कार्यकलाप उनके तथाकथित एवं विज्ञापित अनुयायियों के, जिन्हें *अर्हत्* कहते हैं, कथनों की पुष्टि नहीं करते। वैदिक नियमों के प्रतिकूल कार्य करते हुए भला वे ऋषभदेव के

अनुयायी कैसे हो सकते हैं ? शुकदेव गोस्वामी ने बताया है कि भगवान् ऋषभदेव के लक्षणों को सुनने के बाद कोंक, वेंक तथा कुटक के राजा ने अर्हत नामक धार्मिक नियमों की प्रणाली का सूत्रपात किया। ये नियम वैदिक नियमों के अनुकूल नहीं थे, अतः इन्हें *पाखंड धर्म* कहा गया। अर्हत सम्प्रदाय के सदस्य ऋषभदेव के कार्यों को भौतिक मानते थे। किन्तु ऋषभदेव तो श्रीभगवान् के अवतार हैं, अतः वे दिव्य पद पर हैं और उनकी समता कोई नहीं कर सकता।

स्वयं ऋषभदेव द्वारा श्रीभगवान् के कार्यों का प्राकट्य हुआ। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (५.६.८) में कहा गया है— *दावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह*—ऋषभदेव की लीलाओं की समाप्ति पर एक दावानल में सम्पूर्ण वन तथा भगवान् का शरीर जलकर भस्म हो गया। इसी प्रकार ऋषभदेव ने लोगों की अविद्या को भस्म कर डाला। अपने पुत्रों को दिए गये उपदेशों में उन्होंने परमहंसों के लक्षणों का प्राकट्य किया। किन्तु अर्हत सम्प्रदाय के नियमों का ऋषभदेव की शिक्षाओं से मेल नहीं खाता।

श्रील बलदेव विद्याभूषण की टिप्पणी है कि *श्रीमद्भागवत* के अष्टम स्कंध में ऋषभदेव का अन्य विवरण भी प्राप्त होता है, किन्तु वे ऋषभदेव इस स्कंध के ऋषभदेव से भिन्न हैं।

**॥पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥**